लेखक– प्रोफेसर नन्दकिशोर विद्यालंकार.

पुनर्जन्म.

भूमिका लेखक– श्री. १०८ स्वामी श्रद्धानन्दजी महाराज

निश्चय जानियें आप इस संसारमें बहुत पुराने हैं, और सदा रहेंगे। इसलिये यदि आप को 'मृत्यु' के इस भीषण नाटक का पूरा हाल जानना हो और यह जानना हो कि मृत्यु के पश्चात् जीवात्माकी क्या गति होती है। पितृयान और देवयान मार्ग क्या हैं। उपनिषदों में स्थानस्थान पर दिये गये जीवन मरण के कितने ही रहस्यों को यदि आप सरल हिन्दी में पढना चाहते हैं। यदि आप जानना चाहते हैं कि किस प्रकार आजकल के धुरन्धर पश्चमीय विद्वान् आपके प्राचीनतम वैदिक सिद्धान्तोंके आगे सिर झुकाते जाते हैं। पश्चिमके घोर नास्तिक वाद तथा डर्विन के विकास-वाद की यदि आप तीव्र आलोचना पढना चाहते हैं तो इस अलौकिक ग्रन्थ को पढिये।

इस ग्रन्थको पढनेसे आपको प्रकृति के निराले पशुपक्षियों के अद्भुत प्रतिभाभरे कौतुकोंका पता लगेगा। सृष्टि उत्पत्तिके वैदिक प्रकरण को आधुनिक विज्ञानके साथ मिलाकर मनोहर रूपमें दर्शाया गया है। इस ग्रन्थसे आपको जर्मनी में किये गये घोडों पर नवीन परीक्षणों का वृत्तान्त विदित होगा। ग्रन्थका विषय दार्शनिक होते हुए भी उसे मनोरञ्जक भाषा में रक्खागया है – इस लिये यह ग्रन्थ अतीव उपयोगी है। श्री. स्वामी श्रीद्धानन्दजी महाराज भूमिका लेखक के अतिरिक्त अन्य विद्वान् क्या लिखाते हैं देखिये:—

"ग्रन्थकर्त्ताने 'पुनर्जन्म' की सचाई को जनसाधारणके आगे स्पष्ट तथा सरल भाषामें रखकर देशकी और विशेषतः हिन्दी साहित्यकी बडी सेवा की है।"

श्रीयुत डाक्टर गङ्गानाथ झा, वाइस चान्सलर इलाहाबाद युनिवर्सिटी।

"मेरी सम्मतिमें इस पुस्तकमें 'पुनर्जन्म' सिद्धान्तके मुख्य मुख्य अङ्गोंको सरलता के साथ विशदरूपमें रखनेमें ग्रन्थकर्ताको पूर्णतया कृतकार्यता हुई है। और मुझे यह सुनकर प्रसन्नता होगी कि हिन्दीके विज्ञ पाठक इस पुस्तकका पूरा आदर करते हैं।

(श्री० डा० प्रभुदत्त शास्त्री एम० ए० पी०एच० डी०, प्रेसिडेन्सी कालेज–कलकत्ता युनिवर्सिटी)

"ग्रन्थकर्ताकी मूल पुस्तकको मैंने देखा था और प्रशंसा की थी–मेरी सम्मतिको स्वीकार कर ग्रन्थकर्ताने इसे प्रकाशित किया और हिन्दी भाषाका उपकार किया यह देखकर मुझे बडी प्रसन्नता है। मेरी हार्दिक इच्छा है कि पुस्तकका आदर हो। (बा० भगवानदास एम० ए० बनारस)

इतनी उपयोगी पुस्तकका दाम केवल १।)

प्रो० नन्दकिशोर विद्यालंकार, C/o. गोविला अण्ड कम्पनी १८।२ हेस्टिंग्स स्ट्रीट कलकत्ता

छप गया ! छप गया !! छप गया !!!

वेदार्थदीपक निरुक्त भाष्य

(लेखक – प्रो ० चन्द्रमणि विद्यालंकार पालीरत्न गुरुकुल कांगडी)

श्री स्वामी श्रध्दानन्द जी लिखते है–

गुरुकुल विश्वविद्यालय कांगडी के वेदोपध्याय श्री पं ० चंद्रमाणि विद्यालंकार पालिरत्न ने मातृभाषा हिन्दी में निरुक्त का अनुवाद और व्याख्या करके आर्य–जगद् का बडा उपकार किया है । इस में सन्देह नहीं कि निरुक्त की वर्तमान टीकाओं द्वारा वेदार्थ में बहुत से भ्रम उत्पन्न हो जाते है, उनके दूर करने का यथाशक्ति बहुत उत्तम प्रयत्न किया गया है । छपाई अच्छी है । मेरी सम्मति में प्रत्येक वैदिक-धर्मी के निजू पुस्तकालय में इसकी एक प्रति अवश्य रहनी चाहिए।

श्रीयुत महामहोपाध्याय पं० गंगानाथ झा एम. ए. पी. एच. डी. वाइस चान्सलर अलाहाबाद युनिवर्सिटी लिखते हैं—

मैं समझता हूं कि इस महत्वपूर्ण कार्य के लिये आपने बहुत समय और मनोयोग अर्पण किया है । मै बहुत देर से अनुभव करता था कि हम लोगोंने निरुक्त पर उतना प्रयत्न नहीं किया जितना कि ऐसे आवश्यक पुस्तक पर किया जाना चाहिए था । इसी लिये मुझ सरीखे पुराने कार्यकर्ताओं के लिये यह बडे सन्तोष का विषय है कि हमारी नयी सन्तति में आप जैसे उच्च योग्यतासम्पन्न विद्वान् निरुक्त पर कार्य करने वाले विद्यमान हैं । मुझे पूर्ण आशा है कि आपका यह प्रथम भाग नेतालोगों से पर्याप्त सहायता तथा सहानुभूति प्राप्त करेगा कि जिससे आप निरुक्त भाष्य के अवशिष्ट भाग के प्रकाशन में समर्थ हो सकें ।

श्री मा० आत्माराम जी एज्युकेशनल इन्स्पेक्टर बडोदा लिखते हैं—

मैंने आपका वेदार्थदीपक निरुक्त भाष्य देखा । इस ग्रन्थ ने एक बडी भारी कमी को पूर्ण किया है । इस अनुसंधान - युगमें प्रत्येक समाज, पुस्तकालय, गुरुकुल, विद्यालय, महाविद्यालय में आप के इस उपयोगी ग्रन्थ की एक प्रति होनी चाहिए—ऐसा मेरा दृढ मन है। इस के प्रकाशन पर मैं आपको मंगलवाद कहता हूं। आपका काम सफल है।

वेद प्रेमियों को वेदसंबन्धी इस अत्यावश्यक पुस्तक को अवश्य पढना चाहिए । पृष्ठसंख्या ५०० और कीमत डाकव्यय रहित ४॥) रु ० है ।

ग्रन्थकर्ता की अन्य पुस्तकें

१ वेदार्थ करने की विधि १० ’ आने
२ स्वामी दयानन्द का वैदिक स्वराज्य । ५आने
३ महर्षि पतंजलि और तत्कालीन भारत ६ आने

निरुक्त के ग्राहकों को तीनों पुस्तकें केवल बारह आने में मिलेगी ।

पत्ता–प्रबन्धकर्ता अलंकार गुरुकुल कांगडी (जि. बिजनौर)

वर्ष ६
अंक ६
क्रमांक
६६

ज्येष्ठ
संवत् १९८२
जून
सन १९२५

वैदिक धर्म

वैदिक तत्त्व ज्ञान प्रचारक सचित्र मासिक पत्र ।

संपादक— श्रीपाद दामोदर सातवळेकर.
स्वाध्याय मंडल, औंध (जि. सातारा)

हमारी हलचलसे कष्ट उत्पन्न न हो ।

उदीराणा उतासीनास्तिष्ठन्तः प्रक्रामन्तः ।
पद्भ्यां दक्षिणसव्याभ्यां मा व्यथिष्महि भूम्याम् ॥
अ. १२।१।२५

(उदीराणाः) उठते हुए , (उत आसीनाः) और बैठे हुए (तिष्ठन्तः) खडे होते हुए , तथा (प्रक्रामन्तः) चलते फिरते और दौडते हुए (दक्षिणसव्याभ्यां) दाएं और बाएं पांवोंसे (भूम्यां) मातृभूमि के अंदर (मा व्यथिष्महि) न कष्ट उत्पन्न करें ।

अर्थात् हमारी जो हलचल होती है उससे किसी भी प्रकार मातृभूमिमें कोई कष्ट उत्पन्न न हो ।

यमयमी सूक्त।

श्रीमान पूजनीय पण्डित चमूपतिजी ने " यमयमी " सूक्त पर " आर्य " मासिकमें तथा " वैदिक मेगाजिन " में बडा विस्तृत, मनोरंजक और गवेषणापूर्ण लेख लिखा है। लेख जिस ढंगसे लिखा है और जितनी मानसिक समता से उस लेखकी वाक्य रचना की है वह निःसंदेह प्रशंसा योग्य है। यदि इस प्रकारकी समता शांति और अन्वेषणा आर्य लेखकों और वक्ताओं में रही, तो निःसंशय महत्त्वपूर्ण खोज होनेकी पूर्व तैयारी होगई है, ऐसा हम कह सकते हैं। यह शांतिपूर्ण अन्वेषणायुक्त लेख लिखनेका ढंग आर्योंको इस समय अवश्य अपनाना चाहिये और श्री. पं. चमूपतिजीने इस प्रकारके लेख लिखनेका प्रारंभ आर्य सामाजिक जगत् में सबसे प्रथम शुरू किया है, इसलिये उनका हम हार्दिक धन्य वाद करते हैं। इतना आवश्यक धन्यवाद देनेके पश्चात् प्रस्तुत लेखकी समालोचना करनेका प्रारंभ करते हैं। इस लेख में पं० चमूपतिजीने निम्न लिखित बातें सिद्ध करनेका यत्न किया है—

१ इन मंत्रोंके (इस सूक्तके) आधार पर यम और यमी को भाई बहिन नहीं माना जा सकता।

२ मंत्र में कहे " (गर्भे) गर्भ में " शब्दका अर्थ 'माताके गर्भमें' ऐसा नहीं है प्रत्युत " उत्पत्तिके पूर्व " ऐसा है।

३ इस सूक्त में यम यमी का तात्पर्य भाई बहिन नहीं है प्रत्युत पति पत्नी है। अर्थात् यह भाई बहिन का संवाद नहीं है प्रत्युत इस सूक्तमें विवाहित पतिपत्नी का संवाद है।

४ यम यमी ये विवाहित स्त्री पुरुष थे। पुरुष सर्वसंगपरित्याग करने लगा, उस समय वह अपनी पत्नीको नियोग की आज्ञा देता है।

५ (भ्राता) भाई इस शब्दका अर्थ इस सूक्तमें (भर्ता) पति है।

६ सारे सूक्तमें दांपत्य की ध्वनि है, भाई बहिनके संवाद की नहीं।

श्री. पं० चमूपतिजीके सारे लेखका सार यही है। अब विचार करना है कि यह सत्य है वा असत्य है।

प्राचीन मतसे विरोध।

जो पं० चमूपतिजीने अपने लेखमें सिद्ध करनेका आग्रह दिखाया है वह इस समयतक किसीने भी माना नहीं है।

१ बृहद्देवता ग्रंथ बडा प्राचीन और प्रामाणिक है उसमें यम यमी को भाई बहिन ही माना है।

२ यास्काचार्य भी अपने निरुक्तमें वह भाव ध्वनित करते हैं, इसी लिये पं० चमूपतिजीने भी लिखा है कि "यास्क भी सायण का साथ देता प्रतीत होता है । (आर्य पृ. २१)"

३ सायन आदि तो स्पष्ट ही यम यमी को भाई और बहिन ही मानते हैं। क्यों कि वे पूर्व परंपराको स्थिर रखते हैं ।

सायण को हम अपने आधारके लिये न भी स्वीकृत करें तो भी बृहद्देवताकार तथा यास्काचार्य निरुक्तकार ये बडे प्रामाणिक व्यक्ति ऐसे नहीं हैं कि जिनका निराकरण यौंही किया जा सकता है ।

ब्राह्मण ग्रंथोंमें "यम और यमी" शब्द अनेक स्थान पर आगये हैं, उनमें भाई बहिन, पुत्र माता, आदि संबंध प्रसंगानुसार वर्णन किया है। एक ही पदार्थ की ओर विभिन्न दृष्टिसे कवि लोग देखते हैं, इसलिये यदि किसी स्थान पर भाई बहिन की कल्पना किसीने की, तथा दूसरे स्थानपर पुत्र और माता की कल्पना की, तो कोई दोष नहीं है। इस विषयमें उषा और सूर्य का दृष्टांत देखने योग्य है । कई स्थानों पर उषाका पुत्र सूर्य कहा है, कई स्थानों पर उषाका जार, उषाका पिता आदि वर्णन है । वह सब काव्य दृष्टीसे देखना चाहिये । वास्तव में सूर्य के स्थानमें पिता पुत्र आदिकी कल्पना लाक्षणिक ही है । उसीप्रकार यम यमीके विषयमें अग्नि तथा पृथ्वी की कल्पना भी लाक्षणिक है, अतः उस से यम यमी को भाई बहिन माननेमें अवश्यही विरोध होता है, ऐसा कहा नहीं जा सकता । प्रत्युत ब्राह्मण ग्रंथोंके अन्यत्र कथनानुसार अग्नि सूर्यका पुत्र और पृथ्वी सूर्यपुत्री है और यदि शतपथानुसार यम यमी अग्नि और पृथ्वी हैं, तो उनका परस्पर संबंध भाई बहिन का भी माना जा सकता है । और यदि ऐसा माना गया, तो शतपथादि ब्राह्मण-ग्रंथ, बृहद्देवता, निरुक्त और सायन भाष्य इनमें परस्पर विरोध बिलकुल नहीं रहता । शब्दार्थ के विषयमें विरोध बेशक रहे, परंतु "यम यमी" ये सहजात भाई बहिन होने में कोई मतभेद ही नहीं।

खोजका महत्व ।

यहां प्रश्न हो सकता है कि ब्राह्मण, निरुक्त आदि ग्रंथोंमें भी भ्रम हो सकता है, इस लिये उन ग्रंथोंमें लिखी बात जैसी की वैसी हम क्यों मानें ? क्या उन के विधानोंकी अधिक खोज करना पाप है ?

इस पर हम कह सकते हैं, कि ऋषि प्रणीत शतपथादि ब्राह्मण हैं और आचार्य प्रणीत निरुक्तादि ग्रंथ हैं । ये ग्रंथ यद्यपि हमारे लिये मार्ग दर्शक हैं, तथापि केवल वह ऋषिका वा महर्षिका वाक्य है, अथवा मुनिका किंवा आचार्यका मत है, इसीलिये सर्वथा आदरणीय मानने

की कोई आवश्यकता नहीं । इस प्रकार की बौद्धिक गुलामी आर्योंमें कभी नहीं थी, और सच्चा आर्य ऐसी गुलामी कभी अपने ऊपर लेभी नहीं सकता। इसलिये शतपथादि ब्राह्मणों से लेकर बृहद्देवता तथा निरुक्तकार तक की मानी हुई बात– कि यमयमी ये आपसमें भाई बहिन ही हैं – श्री. पं० चमूपतिजीने स्वीकृत नहीं की, और अपनी खोज आगे बढाई, इस लिये हम उनका धन्यवाद गाते हैं । खोज सत्य हो वा असत्य, बौद्धिक गुलामी वृत्तिको हटाकर आगे बढाने से ही जनताका हित होता है ।

केवल शतपथ में महर्षि याज्ञवल्क्यने कहा है इसलिये उसको आंख बंद करके स्वीकार करना कदापि योग्य नहीं है । परीक्षाकी भट्टीमें उसको तपाकर शुद्ध है वा अशुद्ध है,इसका अवश्य निर्णय करना चाहिये ।

खोज की सचाई ।

इसके पश्चात् " खोजकी सचाई" की भी खोज होनी चाहिये, वह सचाई की परीक्षा आंतरिक प्रमाणोंपर निर्भर है । प्रकृत प्रसंगमें यम यमी भाई बहिन हैं ऐसा निरुक्तकार तक के ऋषिमुनियोंने माना है, श्री. पं. चमूपतिजीने उनको पतिपत्नी सिद्ध करनेका आग्रह किया है । इनमें से कौनसा पक्ष ठीक है और कौनसा ठीक नहीं है, ऐसा विचार करने के समय स्वयं यमयमी सूक्त क्या कहता है इसपर अंतिम निर्णय होना संभव है । हमारे विचारसे पं. चमूपतिजीका मत यमयमी सूक्तके आंतरिक प्रमाणोंसे सिद्ध नहीं होता, इसलिये केवल खोज करनेके यत्न के लिये उनको धन्यवाद देनेपर भी खोजकी असत्यता के कारण उनके मतका स्वीकार किया नहीं जा सकता ।

यमयमी का अर्थ ।

यमयमी का अर्थ क्या है इस विषयमें पं. चमूपतिजीने बडे विस्तार से अवतरणिकामें लिखा है —

यम । यमी । (सूक्तकी देवता)
आग्नि । पृथ्वी । (श. ब्रा. ७।२।१।१०)
(भाई[युगल]बहिन) बृहद्देवता ७।१६३
दिन । रात्री । (मोक्षमुल्लर)

यमयमी के ये अर्थ लें अथवा कोई अन्य अर्थ किये जांय । इन अर्थों के विषयमें कोई विवाद करनेकी आवश्यकता ही नहीं है। क्यों कि उक्त शब्दोंका कोई भी क्यों न अर्थ हो, उनका पारस्परिक संबंध जो यमयमी सूक्त में कहा है, वह भाई बहिन का संबंध है, वा पति पत्नीका संबंध है, यही विचारणीय बात है और वह बात शब्दोंके अर्थ देखनेसे ही केवल निर्णीत नहीं हो सकती । देखिये यमयमी का दिन रात्री यही अर्थ लीजिये। दिन और रात्री का संबंध भाई बहिन का भी हो सकता है, क्यों कि विवस्वान सूर्य का पुत्र दिन और पुत्री

रात्री है। उनको परस्पर माता और पुत्रका भी संबंध माना जा सकता है। रात्रीका पुत्र दिन और दिनकी पुत्री रात्री जैसा कवीका विचार और कल्पना हो, वैसा माना जा सकता है। दिन पति, रात्री पत्नी और चंद्र उनका पुत्र यह भी एक कल्पना है। तात्पर्य कविकल्पना की आर्ष वाङ्मयमें सीमा नहीं है। इसकारण प्रकृत विचारमें यमयमी का शब्दार्थ देखने और निश्चित करनेका विशेष महत्त्व नहीं है।

विशेष महत्त्व इस बातका है कि इस सूक्त में दोनों का पारस्परिक संबंध किस प्रकार का वर्णित है। इसलिये श्री. पं. चमूपतिजी ने स्वीकृत किये संपूर्ण अर्थ मानते हुए भी हम परिणाम में सहमत नहीं हो सकते।

यौगिक अर्थ।

यमयमी का यौगिक अर्थ "संयमी" ऐसा श्री. पं. चमूपतिजी ने स्वीकृत किया है। परंतु ऐसा मानने पर—

यम—संयमी पुरुष (पति या भाई)

यमी—संयमी स्त्री (पत्नी या बहिन)

दोनों संयमी होनेसे इस सूक्तकी संगति ही लग नहीं सकती, क्यों कि यमी के नामपर जो मंत्र हैं उनमें काम विकार भयानक रूप लिया हुआ दिखाई देता है। यौगिक अर्थ के पक्षमें दोनों को संयमी मानना पडेगा, वह यमीके भाषण में संगत नहीं होता, क्यों कि यमी संयमी दिखाई नहीं देती है। इसलिये इस सूक्त के विषयमें यमका अर्थ "संयमी" नहीं है।

यम का दूसरा अर्थ "युगल, जुडे भाई, एक योनिसे उत्पन्न सहजात भाई" यह है। यही यहां लेना चाहिये। यह अर्थ यम के विषयमें जैसा संगत होता है वैसा ही यमी के विषय में होता है, यही भाव लेकर बृहद्देवताकारने वैवस्वत यम यमी की कथा लिखी है।

यम संन्यासी नहीं है।

श्री. पं. चमूपतिजी कहते हैं कि यम संन्यास वृत्तिसे प्रभावित है, इसलिये वह संसार सुखसे दूर हो रहा है, परंतु यह उनकी निज कल्पना ही केवल है। यमयमी सूक्त में इसके विषयमें विरुद्ध प्रमाण है—

बतो बतासि यम नैव ते मनो
हृदयं चाविदाम। अन्या किल
त्वां कक्ष्येव युक्तं परिष्वजाते
लिबुजेव वृक्षम् ॥ १३ ॥

ऋ. १०।१०

यमी कहती है—"हे यम! तू सचमुच बलहीन है? तेरे मन और हृदय का हमें पता ही नहीं लगा. कोई अन्य स्त्री तेरा आलिंगन करेगी जैसी पेटी घोडेका और बेल वृक्षका।"

यहां यमी कहती है कि "हे यम! तेरा मन मुझपर नहीं है, तू दूसरे ही स्त्रीका स्वीकार करेगा और वह स्त्री तुझे

आलिंगन देगी । "

इस समय यमको अवसर है, कि वह अपने संन्यास व्रतका निश्चय यमीसे कहे, परंतु वह यमीका कथन अपनी मुग्धतासे स्वीकृत करके यमीके ही शब्दोंमें उत्तर देता है, परंतु एक भी शब्द से यमी के पूर्व मंत्रोक्त कथन का निषेध नहीं करता, देखिये —

अन्यमू षु त्वं यम्यन्य उ त्वां परि-
ष्वजाते लिबुजेव वृक्षम् । तस्य
वा त्वं मन इच्छा स वा तवाधा
कृणुष्व संविदं सुभद्राम् ॥ १४ ॥

ऋ. १०। १०

यम उत्तर देता है—"हे यमि! किसी और को तू, तथा कोई और तुझे आलिंगन करे, जैसे बेल वृक्ष को । तू उस के मन की इच्छा कर, वह तेरे मनकी इच्छा करेगा । इस प्रकार तुम दोनों की संगति तू अपने लिये कल्याणकारी कर । "

यह पूर्व मंत्रमें कहे यमीके कथन का उत्तर यम देता है । इसमें वह सन्यास का उल्लेख नहीं करता, वह इतनाही कहता है —

"कि (जैसा मैं किसी अन्य स्त्री को आलिंगन दूंगा,) उसी प्रकार तू भी किसी अन्य पुरुष को आलिंगन देगी ।"

यह मंत्र देखने से स्पष्ट पता लगता है कि, यम के मनमें वैराग्य का लेश भी नहीं है । वह वैराग्य और सन्यास भाव के कारण यमीके साथ संबंध नहीं छोडना चाहता है, अर्थात् यम के निषेधका कारण अन्य है, वह इसी के पूर्व मंत्रमें देखिये —

न वा उ ते तन्वा तन्वं संपपृच्यां
पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात् ।
अन्येन मत् प्रमुदः कल्पयस्व न
ते भ्राता सुभगे वष्ट्येतत् ॥ १२ ॥

ऋ. १०।१०

यम कहता है—"मैं तेरे शरीरसे अपना शरीर संयुक्त न करूंगा । (यः) जो (स्वसारं) अपनी बहिनके पास (निगच्छात्) गमन करे, उसे (पापं आहुः) पापी कहते हैं । इसलिये मेरे सिवा किसी दूसरे से तू आनंद कर । तेरा (भ्राता) भाई (न वष्टि) यह नहीं चाहता । "

इसमें दो वाक्य स्पष्ट हैं —

(१) यः स्वसारं निगच्छात् तं पापं आहुः = जो बहिन के पास जाता है, उसे पापी कहते हैं ।

(२) ते भ्राता एतत् न वष्टि = तेरा भाई यह नहीं चाहता ।

इन मंत्रों का दूसरा कोई अर्थ नहीं है । यम अपनी बहिनसे शरीर संबंध करना नहीं चाहता । उसने "यमी बहिन होने के कारण ही शरीर संबंधका निषेध किया है," न कि स्वयं विरक्त होनेके कारण । संपूर्ण सूक्तमें एक भी शब्द ऐसा नहीं है, कि जिससे यम का वैराग्य सिद्ध हो जाय । पूर्व स्थान में जो १४ वां मंत्र दिया है, उस में यमने योग्य उप-

सर आने पर भी विवाह निषेध अथवा अपने वैराग्य का उल्लेख किया नहीं है। इतनाही नहीं, परंतु ध्वनित किया है कि "जैसा मैं दूसरी स्त्रीसे आनंद करूंगा वैसा तू भी कर" यह उत्तर देखनेसे और उसके अनुसंधान से इस मंत्रके (यमी -स्वसा) यमी बहिन तथा (यम-भ्राता) इन शब्दोंका प्रयोग देखनेसे स्पष्ट पता लगता है कि, यहां भाई बहिन के विवाह का निषेध है।

यम यमी
भ्राता स्वसा
(भाई बहिन)

इस स्थानपर "भ्राता" शब्दका अर्थ श्री. पं. चमूपतिर्जाने (भर्ता) पति किया है और "स्वसा" शब्दका अर्थ (अभिसारिका) प्रेमपत्नी किया है; यह न केवल गलत है, परंतु निराधार भी है। भ्राता और भर्ता ये शब्द एक धातुसे उत्पन्न होने पर भी "भाई" और "पति" के क्रमशः वाचक हैं। स्वसा शब्दका अर्थ पत्नी नहीं है, परंतु भगिनी है।

धात्वर्थ और यौगिक अर्थ की इतनी खींचातानी करनेसे और भ्राता का अर्थ पति करने से कोई विशेषता नहीं होती हैं। यदि इतना अर्थ खींचना है, तो अर्थका अनर्थ दूसरा और कोई नहीं हो सकता है। इस प्रसंगमें अथर्ववेदीय यमयमीसूक्त में जो दो मंत्रार्ध अधिक हैं, वे भी यहां देखने योग्य हैं —

न ते नाथं यम्यत्राहमस्मि न ते तनूं तन्वा सं पपृच्याम् ॥ १३ ॥
असंयदेतन्मनसो हृदो मे भ्राता स्वसुः शयने यच्छयीय ॥ १४ ॥
अथर्व १८।१

यम कहता है—"हे यमि! तेरा मैं (नाथ) नाथ (न अस्मि) नहीं हूं, जो मैं तेरे शरीर से अपने शरीर का संबंध करूं॥ मेरे मन और हृदय से यह बिलकुल प्रतिकूल है, जो (भ्राता) भाई होकर (स्वसुः) बहिन के (शयने) बिछोनेपर (शयीय) सो जाऊं॥"

ऋग्वेद के यमयमी सूक्तसे अथर्व वेदके सूक्तमें ये दो मंत्रार्ध अधिक हैं। और विचार करनेसे पता लगता है, कि ये मंत्रार्ध संदिग्ध बात अधिक स्पष्ट करनेके लिये ही आगये है।

(१) [हे यमि! अत्र अहं ते नाथं न अस्मि] = हे यमि! यहां मैं तेरा नाथ नहीं हूं।

(२) [भ्राता स्वसुः शयने शयीय एतत् मे मनसः हृदः च असंयत्] = भाई बहिनके बिछोने पर सोवे यह मेरे मन और हृदयसे विरुद्ध है।

ये मंत्र स्पष्ट बता रहे हैं कि, यम और यमी भाई बहिन हैं न कि पतिपत्नी। और इसी कारण यम यमीके साथ शरीरसंबंध करना नहीं चाहता, क्यों कि वैदिक धर्म के अनुसार भाई बहिनका विवाह निषिद्ध ही है।

श्री. पं. चमूपतिजीने ये मंत्र अपने भाष्यमें लिये नहीं हैं। लेते तोभी यहां भ्राता शब्दका अर्थ पति करना उनके लिये कोई अशक्य नहीं था। एक वार दृढ मन करके मंत्रों के अर्थ तोड मरोड करके अपने ढंगसे ढालने हि हैं, ऐसा संकल्प जो करेंगे उन के लिये "भ्राता और स्वसा" शब्द कितनीसी रुकावट डाल सकते हैं? शोक हमें इस बातका है कि जिसने वेदके लिये इतना त्याग किया है। वे ही वेदके अर्थ अपने ढंगके अनुकूल ढालनेके लिये "भ्राता और स्वसा" को इतना पीसनेके लिये तैयार हुए हैं!! देखना है कि वेदके लिये ये सज्जन समर्पित होते हैं या वेद इनके लिये समर्पित बनाया जाता है !!! महाभारतमें इसीलिये कहा है –

बिभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं प्रतरिष्यति।

म० भारत आदि. अ. १।२६७

" अल्पश्रुत अर्थात् जिसने श्रुतिका अध्ययन (श्रवण– मनन – निदिध्यासन) नहीं किया, उस पुरुषसे (वेदः बिभेति) वेद घबडाता है, क्यों कि वेद को यह डर लगता है, कि यह अल्पश्रुत पुरुष (मां) मुझे अर्थात् वेदको (प्रतरिष्यति) बिगाडेगा "।

यह वेदके मनमें डर है। यह डर हमें यहां सार्थ और सयुक्तिक प्रतीत होता है। क्यों कि जिस ढंगसे विद्वद्वर्य श्री० पं० चमूपति जी वेदकी खोज कर रहे हैं उस ढंगसे वेद के शब्दों का अर्थ बिलकुल सुरक्षित नहीं है। " भ्राता " शब्दका अर्थ पति होगया।" स्वसा " शब्दका अर्थ धर्मपत्नी बना दिया, अब केवल " माता " शब्द का यौगिक अर्थ " मान्य करनेवाली " है, वह ले कर " पतिके लिये मान्य करनेवाली धर्मपत्नी" इतना ही अनर्थ करना शेष है!!! भ्राता और स्वसा के शब्दार्थ बिगाडनेसे जो डरते नहीं वे " माता " का अर्थ धर्म पत्नी करनेसे भी डरेंगे क्यों ? धात्वर्थ अथवा यौगिक अर्थ लेकर अर्थ करना तो है, उसका ढंग आ जाय या, न आजाय; अपने मन घडंत अर्थको सिद्ध करना है, उस कार्य की पूर्ति के लिये वेदके अर्थ तोडे और मरोडे गये, तो इनको पर्वाह कहां है? थोडीभी पर्वाह होती तो इतना अनर्थ ["भ्राता" का अर्थ पति!] कभी न करते। हमें वारंवार आश्चर्य होता है कि इनसे इतना साहस कैसा होता है?

भ्राता और भर्ता !

भ्राता शब्द जगत् की कई भाषाओं में है, युरोपकी प्रायः सब भाषाओं में गया है, परंतु किसी भी भाषामें इसका अर्थ पति नहीं है। यौगिक अर्थ देखकर भाव निश्चित करने के लिये इस प्रकार का प्रयुक्त अर्थका कोई आधार चाहिये। भ्राता शब्दका जिस जिस भाषा में प्रयोग

है वहां केवल "भाई" यही एक अर्थ है । पति ऐसा किसी भी भाषामें इसका अर्थ नहीं है ।

केवल एक धातुसे उत्पन्न होनेके कारण संपूर्ण शब्दोंका एक ही अर्थ नहीं होता । जिस भ्रमसे यहां पं. चमूपतिजीने भ्राता का अर्थ पति किया है, उसी प्रकार के अन्य भ्रमसे महाराष्ट्रीय पंडित और इतिहास संशोधक महात्यागी सुविज्ञानी श्री. विश्वनाथ काशिनाथ राजवाडे महोदयजीने भी यहां भ्राता का अर्थ पति कर के इसी सूक्तसे यह अनुमान घड दिया है कि -"वेदके पूर्व समय की जनता में भाई बहिन आपस में शादी करते थे, इसका सूचक यहां का भ्राता शब्द है क्यों कि भ्राता तथा भर्ता ये एक ही धातुसे शब्द बनते हैं !!"

इस लेख का हम खंडन ही करनेका विचार कर रहे थे, इतने में इसी मतकी पुष्टि करने वाला लेख श्री. पं. चमूपति-जीका प्रसिद्ध हुआ ! तब हमें सचमुच आश्चर्य प्रतीत हुआ! हां इन दोनों लेखों में भिन्नता इस बातकी है कि पं. चमूपति जी यम यमी को इसी सूक्तमें भी पतिपत्नी सिद्ध करते हैं, परंतु पं. राज-वाडे जी इससे पूर्वकालीन बात सिद्ध कर रहे हैं । दोनों ने "भ्राता" शब्द के यौगिक अर्थ का ही प्रमाण अपने आधार के लिये दिया है । भ्राता का अर्थ पति करनेसे कितना अर्थ का अनर्थ होता है यह यहां देखिये । अस्तु।

यम और यमी भाई बहिन हैं, युगल हैं, एक गर्भ से सहजात भाई बहिन हैं, यही बात इसी सूक्त में यमीने भी कही है —

गर्भे नु नौ जनिता दम्पती कर्देवस्त्वष्टा सविता विश्वरूपः । न किरस्य प्रमिनन्ति व्रतानि वेद नावस्य पृथिवी उत द्यौः ॥ ५ ॥

ऋ. १०।१०।

यमी कहती है — "परमेश्वरने हमें (गर्भे) गर्भ में ही दंपती बनाया है । उसके नियमों को कोई तोड नहीं सकता। है."

इस मंत्रमें (गर्भे नौ दंपती कः) परमेश्वरने गर्भ में ही हम दोनों को दंपति बनाया था, यह कहा है क्यों कि एक गर्भ में सहजात भाई बहिन ये थे। इसलिये यमी का कहना यह है कि "यदि हमारा विवाह परमेश्वर को मंजूर न होता, तो हमें एक गर्भ में क्यों बनाता? जिस कारण सर्व सामर्थ्यशाली परमात्माने हमें एक गर्भ में रखा, तो उसने ही गर्भ में हमारा पति और पत्नीका संबंध बना दिया है । परमात्मा के नियम कोई तोड नहीं सकता, इसलिये हे यम ! तू उसके नियम न तोड और मेरे साथ शरीरसंबंध कर ।"

यह कथन स्पष्ट बता रहा है, कि ये सहजात भाई बहिन हैं । यदि ऐसा न

माना जाय तो शब्द के अर्थ ही विपरीत करने पडेंगे और वर्मीके कथन का भाव भी (Force of argument.) बिलकुल नहीं रहेगा । "धर्म " का अर्थ श्री. पं. चमूपतिजी भिन्न ही मानते है, वह उनकी रुची और आग्रह है । पूर्वापर संगति देखनेसे उनको अपनी गलतीका पता लग जायगा । अब यमयमी विवाहित थी या नहीं, इसका विचार करना है —

यमयमी पतिपत्नी नहीं थी ।

इस विषयमें मंत्र ७ का प्रमाण देखनेसे यह बात स्पष्ट हो जाती है । देखिये वह मंत्र —

यमस्य मा यम्यं काम आगन्त्समाने योनौ सह शेय्याय । जायेव पत्ये तन्वं रिरिच्यां विचिद्वहेव रथ्येव चक्रा ॥ ७ ॥

ऋ. १०।१०

यमी कहती है —"मुझ यमी को यम का काम हुआ है, एक साथ शयन स्थानमें सोनेके लिये । जिस प्रकार (जाया) स्त्री अपने (पत्ये इव) पतिके लिये अपना शरीर प्रगट करती है, उस प्रकार मैं अपना शरीर प्रगट करूं और हम रथके चक्रोंकी तरह उद्यम करें ।"

इस मंत्रमें (जाया पत्ये इव) "धर्मपत्नी अपने पतिके लिये जिस प्रकार होती है उस प्रकार मैं यमी तेरे (यमके) साथ रहूं " यह भाव प्रकट होगया है । यदि यमयमी विवाहित पतिपत्नी हैं, जैसा कि श्री. पं. चमूपतिजी मानते हैं, तो (जाया पत्ये इव) " पति पत्नी के समान" इन शब्दों की व्यर्थता होगी । जो विवाहित पतिपत्नी अर्थात् दंपति हैं उनको (जाया पत्ये इव) पतिपत्नी समान कहा नहीं जा सकता, क्यों कि वे स्वयं पतिपत्नी हैं । "घोडा घोडेके समान "ऐसी उपमा नहीं होती । जिस अवस्थामें जो होगा उसको उसीकी उपमा संगत नहीं होती ।

यमी प्रस्ताव कर रही है और यमसे याचना कर रही है कि "मैं तेरे साथ इस रीतिसे रहना चाहती हूं कि जैसी पत्नी पतिके साथ रहती है । "यमी का प्रस्ताव स्वीकृत हो जाय तोही दोनोंका पतिपत्नी संबंध विवाह संस्कार के पश्चात् बनना है । प्रस्ताव के समय गांधर्व विवाह पद्धतिमें भी पतिपत्नीका संबंध नहीं होता है । प्रस्ताव स्वीकृत होने पर गांधर्व विधिसे विवाह होनेके पश्चात् वह संबंध होगा ।

इस सप्तम श्लोक के शब्द देखनेसे स्पष्ट पता लगता है और साथ साथ पूर्वके मंत्र देखनेसे भी स्पष्ट होजाता है, कि यमी का प्रस्ताव यम स्वीकार ही नहीं करता, इसलिये कि यम भाई है । भाई बहिन का किसीभी अवस्थामें शरीर संबंध न होने यह बात बताना वेदको यहां अभीष्ट है ।

(१) यमके साथ सोना, (२) पति पत्नी के समान रहना, (३) रथके चक्रोंके समान रहना, यह सब यमी की इच्छा है, यमी का प्रस्ताव है। पाठक यहां स्मरण रखें की विवाह संस्कार से प्राप्त अवस्था यह नहीं है। सहजात भाई बहिन का अवश्य विवाह होना चाहिये, यह यमीका पक्ष है, यमी इसी हेतु को देकर कहती है --

रात्रीभिरस्मा अहभिर्दशस्येत्सूर्यस्य चक्षुर्मुहुरुन्मिमीयात्।
दिवा पृथिव्या मिथुना सबंधू यमीर्यमस्य बिभृयादजामि ॥ ९ ॥
ऋ १०।१०

यमी कहती है--"रात्री और दिन इसे उपदेश दें। सूर्य की चक्षु इसकी आखे खोलें। द्यौ और पृथिवी यह युगल आपसमें संबंधित है। उसी प्रकार यमी यम के साथ (अ-जामि) बंधुत्व-रहित संबंध धारण करे।"

इस मंत्रमें "सहजात युगल भाई बहिन आपस में पतिपत्नीवत् रहते है इसलिये यमयमी सहजात भाईबहिन भी वैसे ही रहें," यह यमी का हेतु (argument) है।

(१) सूर्य से उत्पत्ति होनेके कारण दिन और रात्री आपसमें सहजात भाई बहिन हैं, तथापि एकदूसरे के साथ पतिपत्नीवत् मिले रहते हैं और यह उनके पिता सूर्यको पसंद है क्यों कि वह वारंवार देखता हुआ भी उसका निषेध नहीं करता। प्रकाश और अंधकार, प्रकाश और छाया, साथ साथ रहते है इसप्रकार यह रूपक यमी बता रही है और सहजातोंका विवाह सृष्टिनियमानुकूल बता रही है।

(२) आत्मासे उत्पन्न होने के कारण द्यौ और पृथिवी सहजात भाई बहिन हैं, तथापि "द्यौः" अपना वीर्य (जल) पृथ्वीपर फेंकता है और वानस्पत्यादि संतति उत्पन्न करता है।

यमी ये दो हेतु देती है और यम के मनको अपना प्रस्ताव स्वीकृत करनेके लिये अपने अनुकूल बनाती है। ये हेतु सहजात भाई बहिन के ही हैं, इन हेतुओंका विचार करनेसे भी पता लगता है कि ये यमयमी सहजात भाई बहिन है, न कि विवाहित पति पत्नी।

उक्त हेतुओंको सुनकर यम उत्तर देता है--

आघा ता गच्छानुत्तरा युगानि यत्र जामयः कृणवन्नजामि। उपबर्बृहि वृषभाय बाहु मन्यमिच्छस्व सुभगे पतिं मत् ॥ १० ॥
ऋ. १०।१०

"हां! वैसे आगे युग आयेंगे जिस समय (जामयः) भाई बहिन (अजामि) बंधुत्वरहित व्यवहार करेंगे। [इस समय वैसा पतित काल नहीं है] इस कारण तू मेरे से भिन्न किसी अन्य पति की इच्छा

कर और अपना बाहू उस बलवान के लिये फैला।"

इस मंत्रमें स्पष्ट शब्दों द्वारा बताया है कि जब तक धर्मका युग रहेगा तब तक भाई बहिन का शरीर संबंध नहीं हो सकता। मनुष्य समाज के पतन की अवस्थामें वैसा होगा। ऐसा पतन का युग अवश्य आयगा यह कहने का तात्पर्य यहां नहीं है, प्रत्युत जो यमीका प्रस्ताव यमके सन्मुख है उसकी स्वीकृतीकी संभावना धर्ममर्यादाके अस्तित्त्व के समय नहीं हो सकती, अधर्मका युग जहां होगा वहांही इस प्रकार का प्रस्ताव स्वीकृत हो सकता है। इतनाही इसका तात्पर्य है। इसलिये स्वयं भाई होनेके कारण यम कहता है कि "तू किसी दूसरे से यह शादीका प्रस्ताव कर, दूसरेसे अपना काम संबंध जोड। यह भाई तेरी यह इच्छा धर्ममर्यादा के कारण पूर्ण करही नहीं सकता।"

जामि और अजामि।

इस सूक्तमे "जामि और अजामि" के शब्द विशेष अर्थ से प्रयुक्त हुए है। यम और यमी दोनोंके कथन में ये शब्द समानही अर्थसे प्रयुक्त हुए हैं। श्री. पं. चमूपतिजीने इन शब्दोंके अर्थोंकी खोज बहुत करनेका यत्न किया है, परंतु अशुद्ध मार्ग से खोजका यत्न करनेके कारण विपरीत परिणाम तक उनकी खोज पहुंची है।

ये मंत्र इतने स्पष्ट हैं, कि इनका विचार करनेके समय हम "जामि अजामि" के अर्थ जो अन्य स्थानमें हैं, न भी देखें, तो भी हम ठीक अर्थ का पता लगा सकते हैं।

मंत्र ९ में दिन रात्री तथा द्यावा पृथिवी के युगल को दर्शाकर यमी यम से कहती है कि "(यमी यमस्य अजामि बिभृयात्) यमी यमके साथ अजामि जैसा संबंध धारण करे।"

यमी चाहती थी कि यमके साथ अपना शरीर संबंध हो। इस शरीरसंबंध का दर्शक "अजामि" शब्द इस मंत्र९ में है। अर्थात् दोनोंका शरीर संबंध न होनेका हेतु "जामि" शब्द बताता है। विवाह निषेध करनेके समय "(नौ परमं जामि) हम दोनोंका परम जामि संबंध है।" इसलिये हम दोनोंका परस्पर शरीरसंबंध नहीं होगा (देखो मंत्र४) ऐसा यम कह रहा है।

इससे सिद्ध है कि इस सूक्त में जामि और अजामि शब्दोंके अर्थ निम्न प्रकार हैं —

जामि = परस्पर का ऐसा संबंध कि जिससे परस्परका शरीर संबंध पतिपत्नी वत् हो नहीं सकता।

अजामि = परस्परका ऐसा संबंध कि जिसमें स्त्रीपुरुषोंका पतिपत्नीवत् व्यवहार हो

सकता है।

इस सूक्त में "भ्राता, स्वसा, एकगर्भ में निवास' आदि वर्णन जो अन्यत्र है, वह देखनेसे यमयमी का भाई बहिन रूप संबंध स्थिर और निश्चित ही है, इस लिये इस सूक्तमें 'जामि" शब्द भाई बहिन का संबंध और "अजामि" शब्द भाईबहिन नहीं ऐसा पतिपत्नी संबंध बतानेवाला माना जाता है और वह युक्तियुक्त ही है।

सत्यका असत्य।

मनुष्य एक वार तुल जाय तो वह मर्जी आये बातें मानने लगता है, वही अवस्था श्री. पं चमूपतिजीकी इस सूक्तकी खोजके समय होगई है देखिये—

न यत्पुरा चकृमा कद्ध नून
ऋतं वदन्तो अनृतं रपम ॥ ४ ॥
ऋ १०।१०।

यम कहता है-'नहीं जो पूर्व समय में हमने किया, कैसे भला अब करें? नियम का व्याख्यान करने वाले ही क्या नियम तोडनेवाला कर्म करें?'

यम के कथन का तात्पर्य यह है कि "जो पहिले कभी नहीं किया गया वह अब हम कैसे करेंगे? अर्थात् भाई बहिन का शरीर संबंध कभी नहीं हुआ वह अब कैसे हो सकता है? क्या हम ही जो नियमों की व्याख्या करनेवाले हैं वे ही नियम तोडनेवाला कार्य करें? ऐसा कर्म हमारे से कदापि नहीं हो सकता। यह यम के कथनका तात्पर्य है। इसका कितना विपरीत अर्थ श्री० प० चमूपतिजीने किया है देखिये—

न यत्पुरा चकृमा कद्ध नून

प चमूपतिकृत अर्थ- " जो हमने पहिले किया अब कदापि नहीं करेंगे'

बिलकुल उलटा अर्थ यह है! और यह बनता भी नहीं क्यों कि "कद्ध नूनं' का अर्थ 'कैसे भला अब? इतना ही प्रश्नार्थक हो सकता है! यदि पिछला 'न' कार, जो यहा आ नहीं सकता वह बलात्कार से लाया भी जाय तो (कद्ध नूनं न ?) कैसे भला अब नहीं? ऐसा हो सकता है। और संपूर्ण मंत्र चरणका अर्थ ' जो हमने पहिले किया कैसे भला अब नहीं करेंगे?' ऐसा बनेगा। परंतु जैसा प०चमूपतिजी लिखते है वैसा कभी हो ही नहीं सकता। अर्थात् प० चमूपतिजी की सांत्वनार्थ हमने नकार को पिछले वाक्यार्धके साथ संबंधित मानने पर भी उनके लिखित अर्थसे बिलकुल विरुद्ध अर्थ होता है और इस अर्थसे यमी का प्रस्ताव स्वीकार करनेका पातक यम कर रहा है, ऐसा सिद्ध हो रहा है!! यम जिस पातकसे अर्थात् भगिनीसे शरीर संबंधके पापसे दूर रहना चाहता है, और वही युक्ति प्रयुक्तिसे बहन को समझा रहा है, वही पातक श्री. प० चमूपतिजी उनके गले में लटका देते

हैं !!! इस प्रकार यदि चतुर्थ मंत्रमें यमकी स्वीकृति ही हुई तो आगे के मंत्रोंका कोई उपयोग ही नहीं रह सकता है।

वास्तवमें " न यत्पुरा चकृमा, कद्ध नूनं " इसमें न कार का संबंध पहिले वाक्य के साथ है और दूसरे वाक्य के साथ नहीं है। क्यों कि यमी के प्रस्ताव का इन्कार ही यमने सर्वत्र किया है, और यमयमी कभी पतिपत्नी के नातेसे रही ही नहीं थीं। इसलिये "जो हमने किया अब कदापि नहीं करेंगे" ऐसी झूठी गवाही यम से दिलवानी अथवा यम की अनुमतिके विनाही न कार को दूसरे स्थानपर ले जाकर यम के कथनका विपरीत ही अर्थ करना यह वेद के पक्षपाती श्रेष्ठ पंडित के लिये कदापि उचित नहीं है।

सखा ।

पहिले मंत्र में यमीने यमको "सखा" शब्द से पुकारा है और दूसरे मंत्रमें यमने भी वह सखा शब्द अपने लिये स्वीकृत किया है। इससे श्री० पं० चमूपति जी अनुमान करते हैं कि दोनों का पतिपत्नी संबंध हो चुका था। परंतु यह अर्थकी किंवा अनुमान की विडंबना है। क्यों कि सखा शब्दसे केवल पतिपत्नी से संबंधित सख्य ही बोधित होता है ऐसा कभी कहा नहीं जा सकता, हां पति पत्नीका सख्य, मित्रोंका सख्य, भाई बहिनका सख्य, पितापुत्र का सख्य, राजा प्रजाका सख्य ये सब विविध सख्य हैं। तात्पर्य सखा शब्द सामान्य समानशीलता बतानेवाला शब्द है। इससे इतना लंबा अनुमान नहीं निकाला जा सकता।

हां, प्रथम मंत्रमें जो सख्य यमी चाहती है वह पतिपत्नी संबंध का ही सख्य है, परंतु यमीका भाव जानकर यम स्पष्ट शब्दोंसे उस का निषेध ही करता है देखिये—

न ते सखा सख्यं वष्ट्येतत् ।
ऋ.१०।१०।२

"तेरा सखा यह सख्य नहीं चाहता" यह यमका कथन है। यमीका प्रस्ताव यम समझ गया था, इसी लिये उसने उत्तर दिया कि " ऐसा सख्य मैं नहीं चाहता। " इससे पूर्व भाई बहिनका सख्य दोनोंमे पहिलेसे था ही। परंतु यमीको भाई बहिन के सख्य की अपेक्षा पतिपत्नी संबंधसे उत्पन्न सख्य चाहिये था। वह यम चाहता नहीं था। क्योंकि यह नवीन प्रस्ताव था। देखिये--

ओचित् सखायं सख्या ववृत्यां
ऋ. १०।१०।१

" मैं अपने सखा को सख्य भावके लिये वर्ण करती हूं। " अथवा मैं अपने सखा के साथ सख्य भावसे वर्तन करती हूं किंवा वर्तन करूं।

इसमें केवल यमी की इच्छा व्यक्त हो रही है, यमी प्रस्ताव कर रही है, यमी

यमको पतित्व के लिये पसंद (choose) करती है। इस शब्द प्रयोग से भी पता लगसकता है कि इनका विवाह इससे पूर्व हुआ नहीं था। यह एक यमी का यमके प्रति (proposal) प्रस्तावित विचार था। इसको श्री. पं. चमूपतिजी-ने गलत समझा है और वे सखा शब्द यहां देखकर ही इनको विवाहित समझने लगे हैं। परंतु वैसा समझने के लिये मंत्रमें अल्प भी प्रमाण नहीं है। प्रत्युत "ववृत्यां" क्रिया भविष्यकाल का प्रस्तावित वर्ताव बता रही है। यदि यह प्रस्ताव यमसे स्वीकृत होता तो वे दोनों पतिपत्नी भावसे रह सकती थीं। परंतु ज्ञानी यमने यमी का अधार्मिक प्रस्ताव माना नहीं, इस लिये उन दोनोंमें विवाह संबंध कभी हुआही नहीं। अब और एक बात देखिये—

समान लक्षण।

द्वितीय मंत्रमें यमके वचनमें निम्न लिखित विधान आता है—

न ते सखा सख्यं वष्टयेतत् सलक्ष्मा
यद्विषुरूपा भवाति ॥

ऋ. १०।१०।२

"तेरा सखा इस प्रकारका सख्य चाहता नहीं जिसमें (स-लक्ष्मा) समान लक्षण वाली (विषुरूपा) विषमरूप वाली बनती है।" अर्थात् समान लक्षण वाली बहिनके साथ विषमरूपवाली स्त्री (पत्नी) के समान व्यवहार करना पडे, इस प्रकार का सख्य मैं नहीं चाहता, यह यम का कथन है।

एक मातापितासे उत्पन्न होने के कारण भाई बहिन के लक्षण, अवयव, चिन्ह आदि बहुत अंशमें समान होते हैं। इस प्रकारके समान चिन्हवाले भाई बहिनका विवाह हुआ तो संतान में बडा बिगाड होता है। इसलिये सगोत्र विवाह शास्त्रमें निषिद्ध माना है। अन्य गोत्र के उत्पन्न स्त्रीपुरुष विषम वृत्तिवाले होते हैं, उनमें गुणकर्म स्वभाव का साम्य देख कर विवाह होना लाभकारी होता है। तात्पर्य विवाहके लिये सगोत्रतासे उत्पन्न होनेवाली समान लक्षणता न हो परंतु भिन्न गोत्रोत्पन्न होनेपर जितनी समान गुणता मिलजाय उतनी अच्छी है। यह बतानेके लिये मंत्रमें ये शब्द आगये हैं। परंतु पं. चमूपतिजीने इस-का भी स्वारस्य नष्ट किया है।

यम कहता है, कि हमारे समान लक्षण हैं, इसीलिये हममें विवाह नहीं हो सकता, क्यों कि विवाह करनेके पश्चात् हमें विरुद्ध आकारवालों के समान आचरण करना पडेगा।

स्त्रीपुरुष विरुद्ध आकारवाले, (वि-सु-रूप) भिन्न रूपवाले हैं, दोनों के रूपमें बडा भेद है। विवाह संबंधके सख्य में ये विभिन्न आकार एक दूसरेके पोषक होते हैं, किसी अन्य सख्य संबंधमें यह नहीं होता।

इसकारण यम कहता है कि हमें उक्त प्रकार आचरण करना पडेगा, इसलिये मैं वैसा सख्य नहीं चाहता, जैसा तू चाहती है।

यहां यमका कथन कितना सीधा है, परंतु श्री. पं. चमूपतिजीने इस मंत्रमें भी विवाहित स्त्रीपुरुष संबंध की बू सूंघी है और इसके लिये " सखा " शब्द में ही उन्होंने प्रमाण देखा है !! परतु यह कैसे सिद्ध हो सकता है, हमारे समझमें नहीं आता है।

तात्पर्य जितनी भी रीतियोंसे हमने देखने का यत्न किया, उतनी रीतियोंसे हमें प. चमूपतिजीका कथन बराबर गलत प्रतीत हुआ है। इसलिये हमारे मतसे –

(१)यमयमी सूक्त में यम और यमी ये आपसमें सहजात युगल भाई बहिन हैं।

(२)मत्रका " गर्भ" शब्द " माता का गर्भ " ही दर्शाता है। वह बेशक् आलंकारिक भी माना जाय तो भी कोई हर्ज नहीं है।

(३)इसमें यमयमीका तात्पर्य पतिपत्नी नहीं है। परतु केवल भाईबहिन ही है।

(४)यमयमी कभी विवाहित नहीं हुई थी परतु केवल यमी यमसे विवाहका हो प्रस्ताव कर रही थी जो यमने स्वीकृत किया ही नहीं।

(५)भ्राता का अर्थ यहां भाई ही है न कि पति।

(६)सारे सूक्तमें भाई बहिनके संवाद की ध्वनि है, दांपत्य संबंध बतानेवाला एकभी शब्द इसमें नहीं है।

(७)विवाह संबंधसे किंवा सांसारिक सुखसे यम विरक्त नही था, परंतु वह बहिनसे विवाह करना नहीं चाहता था।

यम और यमी।

यम और यमी शब्द भाईबहिनके वाचक होने के विषयमें साधारण प्रमाण भी यहां देखने योग्य है।

यम	यमी
पुत्र	पुत्री
कुमार	कुमारी
कृप	कृपी
गौतम	गौतमी

इत्यादि अनेक शब्द भाई बहिन का संबंध बताने वाले संस्कृत सारस्वतमे प्रसिद्ध है। कई स्थान पर अन्य अर्थ भी होगा परंतु वह इनके भाई बहिन होनेका पूर्ण निषेध नहीं करता, इतना ही यहां बताना है।

अंतमें।

निवेदन इतनाही है कि वेदकी खोज करने के मिषसे वेदको अपनी मर्जीके अनुसार ढालना नहीं चाहिये। परंतु मनकी अवस्था यह रखनी चाहिये कि

वेदसे हमें कुछ प्राप्त हो। वेदसे धर्म हमें सीखना है न कि वेदके सिरपर हमने अपने मनका धर्म मढना है।

श्री. पं. चमूपति जीका हमें पूर्ण परिचय है। वे विद्वान, सुविचारी, वेदके प्रेमी, ऋषियोंके भक्त, शास्त्रोंके श्रद्धालु, उत्साही, धार्मिक मनः प्रवृत्तिसे युक्त हैं। अन्यान्य सद्गुण भी उनके अंदर बहुत हैं।

यदि अपने प्रयत्नसे वेदमंत्रकी ऐसी शोचनीय अवस्था बनेगी, इस विषयमें थोडासा भी संदेह उनके मनमें खडा हो जाता, तो वे इस प्रकार का लेख लिखनेको कभी प्रवृत्त ही नहीं होते। हमारा पूर्ण विश्वास है कि यह खोजका प्रयत्न उन्होंने बडी श्रद्धासे और वेदपर अटल निष्ठासे ही किया है, परंतु दिशा भूल होनेके कारण परिणाम विपरीत ही होगया है।

दिशाभूल।

आजकल कई विद्वान ऐसे हैं कि जो वेदके विषयमें श्रद्धा तो रखते हैं, परंतु अपनी दिशाभूल होगई है इसका इन को पता तक नहीं है! और वे बडे वेगसे वेदके विषयमें लेख लिखते है। इस प्रकारके कई विद्वानों के लेख और पुस्तक भी इस समय जनता में प्रचलित होगये हैं। परंतु इनके पुस्तकों से वेदके ज्ञानका प्रचार तो दूर रहा, परंतु वेदके विषयमें अज्ञानही अधिक फैल गया है और जनता वेदके धर्मसे प्रतिदिन दूर ही हो रही है। परंतु इनको पता तक नहीं है कि अपने प्रयत्नसे हो क्या रहा है? हम जो करना चाहते थे वह बन रहा है वा बिगड रहा है इसका भी इनको पता नहीं है।

निश्चय समझना चाहिये कि यह वैदिक धर्म की रक्षा का प्रयत्न निःसंदेह ही नहीं है। परंतु यह वैदिक धर्म के नाश का ही प्रयत्न है। यह अवस्था जब इनके ध्यानमें आजायगी तब तो कुछ लाभ की आशा है, परंतु ध्यानमें आनेकी संभावना ही हमें दीखती नहीं है। ये अपने मनः कल्पित अवस्थापर ऐसे दृढ हैं कि उससे एक रतिभर भी हिलना नहीं चाहते।

औंध में पशुयागका शास्त्रार्थ।

औंध में जो पशुयाग विषयमें शास्त्रार्थ होने वाला है, उसके लिये सहायता आ रही है। ता. २० मई तक जो सहायता प्राप्त हुई है उसका ब्यौरा नीचे दिया है।

" निर्मांस यज्ञ " विषयपर जो पुस्तक मुद्रित करना है उसके लिये मुद्रणव्यय करीब दो हजार चाहिये। उसमेंसे इस समय तक करीब तीसरा भाग वसूल हो गया है। पाठक प्रयत्न करेंगे तो शेष रकम वसूल होना कोई अशक्य बात नहीं है। आशा है कि पाठक सज्जन अपने अपने स्थानपर यत्न अवश्य करेंगे ही।

कई पाठकों ने अपनी संमति निर्मांस यज्ञके अनुकूल लिखकर भेजी है और कई पुरुषार्थी सज्जनोंने अपने नगरमें सभा करके उस सभाकी संमतिभी लिखकर सबके हस्ताक्षरोंके साथ हमारे पास भेजी है। कई आर्य समाजियोंने व्यक्तिशः तथा कई समाजों ने संघशः पशुयाग के प्रतिकूल संमति लिखकर हमारे पास भेजी है सो पहुंच चुकी है। इन सबका हार्दिक धन्यवाद है।

इस समय हमारे पास करीब चारसौके हस्ताक्षर प्राप्त हुए हैं आशा है कि अगले महिनेमें इससे अधिक प्राप्त हो जायंगे। समय पर इस सबका प्रभाव अच्छाही हो जायगा।

शास्त्रार्थ की तिथि अभीतक निश्चित नहीं हुई। लिखा पढी ही चल रही है। तिथिका निश्चय होते ही एक मास पूर्व वृत्तपत्रों द्वारा सबको सूचना दी जायगी।

कई लोगोंके पत्र हमारे पास आगये है जो कि शास्त्रार्थ के समय यहां उपस्थित होना चाहते हैं। उनके प्रति निवेदन है कि उन को एक मास पूर्व पत्र द्वारा सूचना अवश्य भेजी जायगी। यहां जितने लोग आवेंगे उनके रहने सहने और भोजनादिका प्रबंध मुफ्त किया जायगा। यहां कई सज्जनोंने उस व्ययका भार उठानेका वचन दिया है।

यहां शास्त्रार्थके समय जो बृहत् हवनयज्ञ किया जायगा उसका सब व्यय श्रीमती आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब, लाहौर ने अपने जिम्मे लिया है। घृत, हवन सामग्री, चंदन काष्ठ आदिके व्यय की व्यवस्था इस प्रकार होगई है। अन्य समिधायें जितनी आवश्यक हैं यहां ही विना मूल्य मिल जायंगी। इस रीतिसे बृहत् यज्ञके व्ययकी व्यवस्था भी हो चुकी है।

इसके अतिरिक्त चार पंडित शास्त्रार्थके समय पर भेजनेका स्वीकार भी श्री० आर्य प्र. सभा पंजाबने किया है। अर्थात् इनका व्यय भी श्रीमती सभाकी ओर से होगा। तात्पर्य इतनी तैयारी होगई है।

बंबई और यू. पी. प्रांतोंके आर्य प्र. सभाओं और पंडितों के साथ लिखा पढी हो रही है। अभीतक उचित उत्तर आये नहीं है। उनका निश्चय होते ही पाठकों को इसी प्रकार सूचित किया जायगा।

इस समय तक जो कमी है वह " निर्मांस यज्ञ " के ग्रंथमुद्रण के व्यय की ही कमी है। अतः पाठकोंसे प्रार्थना है कि वे इसके लिये उचित सहायता शीघ्र ही भेज दें, क्यों कि यह पुस्तक अतिशीघ्र छपकर तैयार होनी चाहिये।

इस समयतक निम्न लिखित सहायता प्राप्त हो चुकी है।

म. मुकुंदलालजी आर्य	४)
म. हरिकृष्ण कन्हैयालालजी	२५)
राजा गोविंद प्रसादजी	१०)
पं. रामचंद्रजी एस. डी. ओ.	५)
श्री. बा. शामलालजी चौधरी	१०)
श्री. मंत्री आर्य समाज बहावलपुर	१०)
श्री. बलवंतसिंह रावजी	५)
पं. मूलचंद शर्माजी धीमान्	५)
म. रामेश्वर दयालजी	२॥)
म. मुं. अंबिका प्रसादजी	५)
म. राधाकृष्णजी पेशकार	६॥)
म रामरत्न लहसन्सदार	२॥)
पं. मूल चंदजी गुप्त	२)
बा. भगवानदिनजी	२)
म. जगन्नाथजी	१)
म. ईश्वरलालजी	१)
म. लक्ष्मीप्रसादजी	॥)
म. देवी प्रसादजी	२१)
म. रणछोडलाल गिरधरलालजी	६०)
म. रामलाल मोहरवानी	५)
श्री. आर. डी. यावलकर	१)
श्री. मेलारामजी मास्टर	५)

प्रधान आर्य समाज कुरुक्षेत्र

म. रामजीदास जी	४)
पं. सोमदत्तजी	२)
पं. शांतिस्वरूपजी	२)
पं. भगीरथजी	२)
म वेदमित्रजी	२)
म. भगतरामजी	१)
म. चिरंजीवजी	१)
म. विश्वबंधुजी	१)
म. लक्ष्मणजी	१)
म. श्रद्धारामजी	१)
म. शिवराजजी	१)
म. गोपालजी	१)
म. द्वारकादासजी	१)
म. नौबतरायजी	।)
म. धर्मदेवजी विद्यार्थी	२)
५८।)	२२)

डा. साहब दयालुजी	१०)
म. सोमाभाई जेठाभाई	५)
म. गणेशदत्तजी (आर्यसमाज जामनगर)	२५)

डा. जयन्तीजी	२६)
म. वि० के० दवे	१०)
शा. देवजी रायसी	७)
म. लक्ष्मीचंदजी	३)
म. मदनजितजी आर्य	३)
श्री. मंत्री आर्य समाज सदर बाजार दलहौसी	२॥)
म. दशरथराम विद्यार्थीजी	२)
म. हुकुम चंदजी	२)
म. हरिभजनजी वैश्य	२)
म. पुरंदर राम सिताराम जायसवाल	५)
पं. सर्वजित जी गौर	२)
डा. ए.एस.वडनेर	३)
भिषगाचार्य श्री.विश्वनाथजी	१०)
म. सरमुख सिंहजी	१०)
श्री. पर्तापसिंहजी	१०)
श्री. महादेव प्रसादजी	१)
श्रीमती रमादेवीजी	॥)
ब्र. कृष्णचंद्रजी	१)
म. संतरामजी	५)
म. काशीरामजी	४)
योग	३५९)
पूर्वप्रकाशित	२३६)
.२२।५।२५ केदिनतक प्राप्त	५९५)

कामधेनु क्या है ?

(श्री हंसराज जी, पुस्तकाध्यक्ष रीसर्च पुस्तकालय, डी. ए. वी. कालेज, लाहौर)

लोक में प्रसिद्ध है कि महर्षि वसिष्ठ के पास 'कामधेनु' नामक एक गौ थी जो कि नाना प्रकार के भोजन वस्त्र रत्नादि यथेष्ट पदार्थ मांगने पर तुरन्त देती थी। उसे विश्वामित्र ने वसिष्ठ जी से छीन लिया था। तथा–

एवमुक्ता वसिष्ठेन शबला शत्रुसूदन।
विदधे कामधुक्कामान्यस्य यस्येप्सितं यथा॥
वा०रामायण बालकांड। ५३।१॥

तस्याथ कामधुग्धेनुर्वसिष्ठस्य महात्मनः।
उक्ता कामान्प्रयच्छेति सा कामान्दुदुहे सदा॥
महाभारत, आदिपर्व, १७५।९॥

निम्न लिखित स्थलों पर भी कामधेनु की चर्चा है:–

१ विश्वरूपा धेनुः कामदुघा मे अस्तु।
अथर्व०४ ३४। ८॥

२ विश्वरूपा धेनुः कामदुघाऽस्येका।
अथर्व० ९। ५। १०॥

३ पश्चिमा वारुणी दिक् च धार्यते वै सुभद्रया। महानुभावया नित्यं मातले विश्वरूपया (?)॥ सर्वकामदुघा नाम धेनुर्धारयते दिशम्। उत्तरां मातले धर्म्यां तथैलविलसंज्ञिताम्॥
महाभारत उद्योग पर्व,१०२।९–१०॥

४– सुदुघा पृश्नि :।ऋ५।६०।५ (पृश्निः)= गोदेवता इतिसायण : cow of plenty-Macdonell's Vedic Mythology Pages 150 and 168.

५ एषा वै स्तनवती विराड्यद्यत्कामं कामयते तं मेतां दुग्धे।ताण्ड्य महा ब्राह्मण २०।१।५॥

उपरि लिखित प्रमाणों से सिद्ध है कि शबला, विश्वरूपा, पृश्निः और विराट् कामधेनु के नामान्तर हैं ॥

यथेष्ट भोजनादि सब वस्तुओं को तत्काल देने वाली किसी ऐतिहासिक कामधेनु का होना तो सृष्टिक्रम के विरुद्ध होने से नितान्त असम्भव है। अब इस बात का अन्वेषण करते हैं कि प्राचीन वैदिक ग्रन्थों में कामधेनु किसे कहा गया है जिसके न समझने से ही ऐसी भ्रान्ति हुई है।

१–निम्न लिखित प्रमाणों से सिद्ध है कि गौ मात्र का नाम कामधेनु है :–

(क) संहितासि विश्वरूपी। यजु० ३।२२॥
संहितासि विश्वरूपा ... एतानि वै गोर्नामानि, संहिता विश्वरूपा गौः। काठक संहिता ७७। (मैत्रायणी संहिता १। ५। ६ भी देखो)॥

(ख) विराड् वै गौः ('विराट्'–यजु०१३। ४३)। शतपथब्राह्मण ७।५।२।१९॥

(ग) एतद्ध देवा इमांल्लोकानुखां कृत्वैतैस्तनैः सर्वान् कामानदुहत तथैवैतद्यजमान इमां लोकानुखां कृत्वैतैः स्तनैः सर्वान् कामान् दुहे॥ सैषा गौरेव। इमे वै लोका उखेमे लोका गौः। शतपथ ६।५।२।१६-१७॥

दुग्ध घृतादि नाना प्रकार के पदार्थ देने से माता के समान मनुष्योंका भरण पोषण करने तथा उनकी खान पान की सम्पूर्ण

मनः कामनाओं को पूर्ण करने से गौ में कामधेनुत्व प्रत्यक्षसिद्ध है तथा; ....

(क) धेन्वनडुहौ वा इदं सर्वं बिभृतः । शतपथ ३ । १ । २ । २१ ॥

(ख) गौर्वा इदं सर्वं बिभर्ति।श०३।१।२।१४॥

(ग) माता धेनुः । श० २ । २ । १ । २१ ५।३ । १ । ४ ॥

(घ) महांस्त्वेव गौर्महिमा ....॥ गार्वै प्रतिधुक् । तस्यै श्रृतं तस्यै शरस्तस्यै दधि तस्यै मस्तु तस्याऽआतञ्चनं तस्यै नवनीतं तस्यै घृतं तस्या ऽ आमिक्षा तस्यै वाजिनम्। श० ३।३।३।८॥

(ङ) मनुष्याणां ह्येतासु (गोषु) कामाः प्रविष्टाः । श० २। ३।४।३४॥

२– निम्न लिखित प्रमाणों से सिद्ध है कि "कामधेनु" पृथिवी का भी नाम है ॥

(क) इयं (पृथिवी) वै पृश्निः । तैत्तिरीय ब्राह्मण १।४।१।५॥

(ख) यातयमानो अधि सानु पृश्नेः । ऋ. ६।६। ४॥

इस मन्त्र में पृश्नि का अर्थ सायण तथा ग्रिफिथ ने नाना रूप वाली पृथिवी किया है ॥

(ग) अथर्व वेदके पृथिवी सूक्त में पृथिवी को स्पष्ट कामदुघा = कामधेनु कहा गया है- त्वमस्यावपनी जनानामदितिः कामदुघाप- प्रथाना ...।१२। १।६१ ॥

(घ) इयं (पृथिवी) वै देव्यदितिर्विश्वरूपी तै० १।७।६।७॥

(ङ) इयं (पृथिवी) वै विराट् श० १२।६। १। ४० गोपथ उ० ६ ।२॥

(च) विराडहीयम्(पृथिवी)।श०२।२।१।२०

(छ) अयं वै (पृथिवि-) लोको विराट् (यजु० १३ । २४) । श० ७ । ४ । २ । २३ ॥

नाना प्रकार के अन्न रस और रत्नादि सब पृथिवीसे ही उत्पन्न होते है । अतः पृथिवी से मनुष्यों की सब कामनाएं पूरी होती है अतः इसका ' कामधेनु ' होना भी प्रत्यक्ष सिद्ध है ।।

३— निम्न लिखित प्रमाणों से वाणी का नाम भी " कामधेनु " सिद्ध होता है:–

(क) वाग्वै शबली (= " कामधेनुः " इति सायणः) तस्मात्त्रिरात्रो वत्सान्त्रिरात्रो वा एतां प्रदापयति।। तद एवं वेद तस्मात् एषाऽप्रत्तादुग्धे । तां० ब्रा० २१ । ३ । १–२ ॥

अमरकोष कां० २, (वैश्य) वर्ग९, श्लोक ६७ की महेश्वर कृत टीका में शबली तथा चित्रवर्णा (विचित्र रङ्गों वाली) गौ को कहा गया है पूर्वोक्त ब्राह्मण वचन मे शबली को वाणी का नाम कथन किया गया है । विचित्र भाषण ही वाणी का विचित्र रूप है । वैसा भाषण करने वाले को पण्डित कहा गया है यथा:—– प्रवृत्तवाक् चित्रकथ ऊहवान् प्रतिभानवान् । आशु ग्रन्थस्य वक्ता च यः स पण्डित उच्यते ।। विदुर नीति १ ३३ ॥

(ख) वाग्वै विराट् श० ३।५।१।३४॥

(ग) वागु सर्वं भेषजम् ।७।२।४।२८।।

यहां वाणी को सब दुःखों के मिटाने वाली अर्थात् सब सुखों को देने वाली कहा गया है, और यहीं वाणी का कामधेनुत्व है ।।

सत्य, अर्थवत्व, विचित्रत्व, माधुर्य्यादि गुणों से युक्त वाणी मनुष्य को क्या क्या ऐश्वर्य्य प्राप्त नहीं कराती, इसी लिये वाणी मनुष्य की सांसारिक समग्र कामनाओं को पूरा कराने से कामधेनु कही गई है तथा वाणी का प्रभाव लोक में प्रसिद्ध है यथा:—

१ – कः परः प्रियवादिनाम्

२ – अभ्यावहति कल्याणं विविधं वाक् सुभाषिता ।

३ – अर्थवच्च विचित्रञ्च न शक्यं बहुभाषितुम् ॥

४ – यदीच्छसि वशीकर्तुं जगदेकेन कर्मणा । परापवादसस्येभ्यो गां (वाचं) चरन्तीं निवारय । (व्याख्यानमालायाम्)

५—कामान्दुग्धे विप्रकर्षत्यलक्ष्मीं कीर्त्तिं सूते दुष्कृतं या हिनस्ति ; तां चाप्येतां मातरं मङ्गलानां धेनुं धीराः सूनृतां वाचमाहुः॥ (सुभाषितभाण्डागारे)

४ निम्नलिखित प्रमाणों से सिद्ध होता है कि कामधेनु उषा का भी नाम है?--

(क) शुक्रवर्मा नभसा ज्योतिषा ऽ गाद् विश्वरूपा शबलीरग्निकेतुः । समानमर्थं स्वपस्यमाना बिभ्रती जरामजर उष आऽगाः॥ तैत्तिरीयसंहिता ४।३।११।५

(ख) धेनुः प्रत्नस्य काम्यं दुहाना .. । ऋ० ३ । ५८ । १ ॥

इस मन्त्र में सायण तथा ग्रिफिथ ने भी "धेनुः" का अर्थ उषा किया है ।।

५– निम्नलिखित प्रमाणों से रोहिणी नक्षत्र का नाम भी कामधेनु है:—

(क) प्रजापते रोहिणी वेतु पत्नी । विश्वरूपा बृहती चित्रभानुः ॥ तैत्तिरीय ब्राह्मण ३ । १ । १ । १ ॥

(ख) दक्षस्य तनया याभूत् सुरभिर्नाम नामतः । गवां माता महाभाग सर्वलोकोपकारिणी ॥ तस्यास्तु तनया जज्ञे कश्यपात्तु प्रजापतेः । नाम्ना सा रोहिणी शुभ्रा सर्वकामदुघा नृणाम् ॥ (शब्दकल्पद्रुमे कालिकापुराणवचनम्)

(ग) सा (विराट्) तत सा ऊर्ध्वारोहत सा रोहिण्यभवत्। तै०१।१।१०।६॥

(घ) विराट् सृष्टा प्रजापतेः । ऊर्ध्वारोहद्रोहिणी । योनिरग्नेः प्रतिष्ठितिः । तै० १ । २ । २ । २७ ॥

विद्वज्जनों से नम्र निवेदन ।

महानुभावो ! खोज करने पर ऐसी ऐसी अनेक बातों का पता लग सकता है अतः आप से यही प्रार्थना है कि आप मुख्यतया वेद तथा तत्सम्बन्धी ग्रन्थों का ही अनुसंधान करें। यदि आप में से कोई भी मेरी प्रार्थना को स्वीकार करें तो मैं अपना प्रयत्न सफल समझूंगा ।

(आर्य जगत्)

अभिनव अर्जुन।

गुरुकुल-कांगडी (हरिद्वार) विश्वविद्यालयके सुविख्यात श्रीमान् देशबन्धु विद्यालंकार उत्तरीय भारतमें 'अभिनवअर्जुन' के नाम से प्रसिद्ध हैं। आपके धनुर्विद्याके चमत्कारोंने हजारों लोगोंको आश्चर्य-चकित कर दिया है। रामायण व महाभारत में प्रतिपादित मत्स्यवेध, शब्दवेध, सप्ततालवेध, अक्षिवेध आदिके अनेक चमत्कारपूर्ण प्रयोग आप अपने धनुष बाणसे करते हैं। योगशास्त्र- प्रतिपादित प्राणविद्यामें आपकी कुशलता देखकर बडे बडे डाक्टर- सिविल सर्जन-तक भी आश्चर्यसे स्तब्ध हो जाते हैं। क्योंकि आप प्राणविद्याके सहारे अपनी हाथ व माथे आदि की नाडियोंकी गति और हृदयकी धडकन तक बन्द कर लेते हैं। शारीरिक बल भी आपने अच्छा सम्पादन किया है। मसल्स कण्ट्रोल्में तो आपने कमाल कर डाला है। हाथीको बांधनेवाली जंजीरमें बांधे जाकर बाहिर निकलना; आदमियोंसे भरी गाडीका छाती, हाथ और जांघपरसे निकाल्ना, १५०० पौण्डका पत्थर छातीपर रखवाना और १५ घोडेकी ताकतकी मोटरका रोकना आपके लिये मामूली बातें हैं।

योग साधन तथा धनुर्वेद की खोज केलिये हम श्री. देशबंधुजीका हार्दिक धन्यवाद करते हैं।

शीर्षासनका अनुभव।

(ले० — श्री० चोखेलाल दीक्षित, कासगंज)

सेवामें श्रीमान मान्यवर महोदयजी नमस्ते हर्ष है। धन्यवाद है॥ निवेदन है कि लगभग बीस सालके बीतचुके होंगे कि मेरी आदत में हो चुका था कि मै किसी रोगमें दवाई करना उत्तम नहीं समझता था। अधिक तर मेरा विश्वास उपवास चिकित्सा पर था। जब से मैंने आपकी लिखी अमूल्य पुस्तक "आसन" का अवलोकन किया है तबसे योग की क्रियाओं द्वारा रोगोंकी निवृत्ति पर आसनों की क्रिया द्वारा अच्छा अनुभव होगाया। मुझे लगभग दो सालसे उदरपीडा शूल दर्द था। "शीर्षासन" करनेसे रोगका नाम तक नहीं रहा। यहां तक कभी कभी गुदा द्वारा लोहू से धोती खराब हो जाती थी वो रोग भी अब नहीं रहा मेरी आयु इस समय ५२ साल की है। मैं १६ अप्रैल से प्रतिदिन शीर्षासन किया करता हूं।

यज्ञका गूढ तत्त्व।

वैदिक धर्मका प्राण ही यज्ञ है। यज्ञ हटा दिया जाय, तो वैदिक धर्म में कोई सत्त्वही नहीं रहता; इतना महत्त्व यज्ञसंस्थाका वैदिकधर्म में है। परंतु जिस प्रकार वैदिक धर्म की अन्यान्य संस्थाएं लुप्त अथवा कलुषित हुईं, उसी प्रकार आर्यों की यज्ञ संस्था भी प्रायः लुप्त और जो अवशिष्ट है वह कलुषित हो चुकी है। इसलिये इस यज्ञसंस्थाका मूल शुद्ध स्वरूप देखनेका यत्न करना चाहिये। वेदका अन्वेषण, तथा प्राचीन परंपरा का अभ्यास करनेसे ही इस यज्ञ संस्थाका पता इस समय भी लगना संभव है। यह कार्य एक दो दिन के अल्प प्रयत्नसे होना संभव नहीं है, प्रत्युत सेंकडों मनुष्य विभिन्न केंद्रों में बीसियों वर्षोंतक ठीक मार्गसे प्रयत्न करेंगे, तभी वह कार्य होना संभव है। इसलिये इस दृष्टिसे थोडासा प्रयत्न इस लेखमें करने का विचार है।

संस्कृतमें सामान्यतः और वेदमें विशेषतः पदार्थों के नाम विशेष महत्त्व रखते हैं, मानो प्रत्येक नाम उस उस पदार्थ की व्याख्या ही है जिसका कि वह वाचक है। यद्यपि प्रत्येक और हरएक शब्द के विषय में हम यह सिद्ध न कर सकें, तो भी बहुत ही शब्दोंके विषयमें उक्त नियमकी यथार्थता इस समयमें भी हम देख सकते हैं। इसी नियम के अनुसार आज यज्ञ के विविध नामों का विचार करना है।

निघण्टु (३ । १७) में यज्ञवाचक १५ नाम दिये हैं, उनके अर्थ और उनके आशय प्रथम देखिये---

(१) यज्ञ।

सबसे प्रथम "यज्ञ" शब्द हमारे सन्मुख आता है। इसका अर्थ सुप्रसिद्ध है- "देव पूजा, संगतिकरण और दान" ये इसके मूल अर्थ हैं। देवोंका सत्कार, संगतिकरण अर्थात् संघटन और परोपकार अर्थात् दूसरोंकी सहायता करने के लिये आत्मसमर्पण करना ये तीन भाव इसमें मुख्य हैं।

विचार करनेसे पता लगजायगा कि ये तीन भाव ही मानवी उन्नतिके महामंत्र हैं। (१) सत्कार करने योग्य जो हैं उनका सत्कार करना, (२) आपसमें संगठनका बल बढाकर अपनी संघशक्ति का उत्कर्ष करना, और (३) जो दीन दुर्बल हैं,

उनकी उन्नति के लिये आत्मसमर्पण करना ये तीन भाव ऐसे हैं, कि जिनके पालन करनेसे हरएक समाज तथा संघ निश्चयसे उन्नत हो सकता है।

देवपूजा करनेका प्रश्न जहां उत्पन्न होता है; वहां देव कौन हैं, देवोंका स्वरूप क्या है, इस प्रश्नका विचार अवश्य करना पडता है। यज्ञके अर्थमें भी ' जो देवपूजा है, वह किनकी पूजा है, इसका यहां विचार अवश्य करना चाहिये।

देव शब्द भाषामें किंवा संस्कृत भाषामें भी प्रसिद्ध है। ब्राह्मणोंको " भूदेव " कहते ही हैं। क्षत्रियों को " देव " शब्दका प्रयोग नाटकादिकों में भी हुआ है। वैश्य धनदेव सुप्रसिद्ध हैं और कर्मदेव शूद्र ही है। ये देवोंके चार भेद आजकलके नहीं हैं अनादिसिद्ध हैं –

ब्राह्मण –– भूदेव, ज्ञानदेव
क्षत्रिय — राष्ट्रदेव, शौर्यदेव
वैश्य –– धनदेव
शूद्र — कर्मदेव

ज्ञान के मुख्य होनेके कारण ब्राह्मणोंको भूदेव कहते हैं, अर्थात् संपूर्ण भूमंडलपर उनका देवत्व है, यह निर्विवाद है। राजा का मान उसके नीचे है क्यों कि राजा का संमान केवल उसके राज्यमें ही होता है, कवि भी कहते हैं –

स्वदेशे पूज्यते राजा
विद्वान् सर्वत्र पूज्यते ॥

अपने देशमें सम्राट् की पूजा होती है परंतु विद्वान की सर्व भूमंडलपर में पूजा होती है।

धन का मान तीसरे दर्जेपर है, इसी लिये व्यवहार में भी राजा की अपेक्षा धनीका मान कम गिना जाता है। द्विजों में ये तीन देव हैं। इसके अतिरिक्त तीनों द्विजों के लिये सामान्य सहायक चतुर्थ जो है उनको " कर्मदेव " कहते हैं। आर्योंकी अवनतिके साररवतमे इन कर्म देवोंको घृणाकी दृष्टिसे देखने का प्रारंभ हुआ, तथापि उन्नतिके साररवतमें इन शूद्रोंकी भी योग्यता बडी तथा नमस्काराई थी।

अस्तु, ये चार प्रकारके देव हैं। जिनकी पूजा देवपूजा कहलाती है। इन चारों में से एक एक प्रतिनिधि और स्त्री-जातीका एक प्रतिनिधि मिलकर पंचायतन पूजा होती है। इसी कारण पंचायतन-पूजामें स्त्री भी संमिलित होगई है। अस्तु। इन चार वर्गों में जो पूजाके लिये योग्य है उनका सत्कार करना यज्ञकी देवपूजा है। इस विषयका विस्तार बहुत हो सकता है, परंतु यहां संक्षेपसे ही देखना है इसलिये यहां इतनाही पर्याप्त है।

" संगति करण " का अर्थ "संगठन" स्पष्ट ही है, समाज तथा राष्ट्रका जीवित ही संगतिकरण के बिना नहीं हो सकता। जातीयताका यही प्राण है।

दान का अर्थ सत्पात्र के लिये अर्पण करना होता है। आजकल इसका भी विपरीत अर्थ हुआ है जो कोई हो उसको अर्पण करनेका नाम

दान नहीं । इस प्रकारके अविचार से किया हुआ दान तामस दान होने के कारण दाताकी अधोगति करता है और लेनेवालेको भी गिरा देता है ।

देव पूजा, संगतिकरण और दान अर्थात् योग्य सत्कारार्होंका सत्कार, संगठन और सत्पात्र में अर्पण ये यज्ञके तीन मुख्य लक्षण हैं । पाठक विचार करके जान सकते है कि, ये लक्षण जिस यज्ञमें घटते है, वह किस प्रकार राष्ट्रका हित साधन कर सकता है । यज्ञका मुख्य ध्येय इसी प्रकार सार्वजनिक अथवा सार्व राष्ट्रीय होता है ।

(२) वेन ।

यज्ञवाचक नामोंमें " वेन " शब्द दूसरा है । " वेन " का अर्थ " गति, ज्ञान, चिंतन, निशामन अर्थात् दर्शन, वाद्यवादन तथा स्वीकार है । इसके अतिरिक्त इसके अर्थ "इच्छा, पूजा, सत्कार, मेधा, " आदि भी हैं । गति अर्थात् हलचल करना, ज्ञान बढाना, चिंतन अर्थात् सोचना किंवा विचार शक्तिकी जागृति करनी, निशामन अर्थात् दर्शन शक्तिका उत्कर्ष करना, दूर दृष्टिका विकास करना, वाद्यवादन अर्थात् गायन-वादन आदिका उत्कर्ष करना और जो अच्छी बातें हैं, जो उन्नतिके साधन हैं, उनका स्वीकार करना । इच्छा शक्ति, मेधा-शक्ति आदि शक्तियोंका उत्कर्ष करना । ये सब कार्य वेन नामक यज्ञके अंतर्भूत होते हैं ।

पाठक यहां देखते और कि पहिले " यज्ञ " की अपेक्षा इस " वेन " के कार्यक्षेत्र में किस रूपमें भेद है । यद्यपि यज्ञ वेन आदि शब्द यज्ञके ही वाचक हैं, तथापि हरएक शब्द से बताया हुआ कार्यक्षेत्र भिन्न भिन्न है ।

साधारणतः समझा जाता है, कि सब शब्द एक ही भाव बताते हैं, परंतु वास्तवमें वैसा नहीं है । प्रत्येक नाम विभिन्न यज्ञसंस्थाका वाचक है । यहां पाठकोंको ध्यानमें धरना चाहिए कि, जिस प्रकार "कर्म" शब्द सामान्य है बैठने उठने से लेकर राष्ट्रवर्धनकारी अश्वमेध पर्यंत सबही यद्यपि कर्म हैं, तथापि आंतरिक दृष्टिसे देखा जाय, तो प्रत्येक कर्म भिन्न भिन्न ही है; उसी प्रकार यज्ञ और वेन ये तथा अन्य यज्ञवाचक शब्द यद्यपि यज्ञवाचक है, तथापि सब का तात्पर्य, उद्देश्य और कार्य क्षेत्र एक ही नहीं है । इसकी भिन्नता इन शब्दोंके अर्थके विज्ञानसे ही विशद हो सकती है ।

पहिला " यज्ञ " शब्द सामाजिक तथा राष्ट्रीय उन्नतिका भाव विशेष कर बताता है और यह " वेन " शब्द " ज्ञान, मेधा, चिंतन " आदि आंतरिक शक्ति विकास की सूचना दे रहा है । पाठक यह उद्देश्यका भेद यहां देखें और यज्ञवाचक दोनों शब्दों से व्यक्त होने वाले कार्यक्षेत्र का विचार अपने मनमें ठीक प्रकार स्थिर करें । ऐसा करनेसेही आगेका विचार समझनेके लिये सुगमता हो सकती है ।

(३) अध्वर।

यज्ञवाचक नामोंमें " अध्वर " शब्द विशेष ही महत्त्व रखता है, इसका ठीक अर्थ " अहिंसा " है। " ध्वर " शब्दका अर्थ " कुटिलता, हिंसा, नाश " आदि प्रकार का है और उसका निषेधक शब्द " अ-ध्वर" है। इस लिये इसका अर्थ " अकुटिल, सीधा, सरल, अहिंसामय, विनाशरहित " ऐसा होता है।

इसके अतिरिक्त और भी एक महत्त्व पूर्ण अर्थ " अध्व-र " शब्दको है। " अध्व " शब्द मार्गवाचक है और " र " शब्द " देना, बताना " बता रहा है। अर्थात् अध्वर शब्दका अर्थ इस व्युत्पत्तिसे " मार्ग दर्शक, सत्यमार्ग को बतानेवाला " है।

जिसमें कुटिलता नहीं है, जो सीधा और सरल है, तथा जिसमें हिंसा नहीं है, वही ठीक मार्गदर्शक हो सकता है। इस प्रकार दोनों अर्थोंकी संगतिभी हो सकती है।

संपूर्ण यज्ञ कर्म कैसा होना चाहिये, उसके कार्यकर्ता किस मनोभावनासे युक्त होने चाहिये और कुल कर्मका उद्देश्य क्या होना चाहिये, इसका निश्चय इस शब्दके मननसे हो सकता है।

संपूर्ण यज्ञकर्म पूर्ण अहिंसामय होना चाहिये, किसीकोभी कायिक वाचिक अथवा मानसिक कष्ट न पहुंचे, यह उद्देश्य यज्ञकर्ताका सदा होना चाहिये। मनके सब कुटिल भाव दूर रखने का यत्न होना चाहिये, तथा सबका कल्याण बढे और किसीका नाश न हो इस विषयका विचार यज्ञकर्ताके मनमें सदा जागना चाहिये।

"सरलता, सीधापन, तेढेपनका अभाव, अहिंसा " येही सद्गुण हैं, जो अध्वरसे बताये जाते हैं। तथा जनताको सत्य मार्ग बतानेवाला यह कर्म होना चाहिये, अर्थात् इस यज्ञ कर्मसे जनता स्वयं सन्मार्गपर चलती रहे, यह इस कर्मका उद्देश्य है।

पहिले " यज्ञ " शब्दने राजकीय तथा सामाजिक उन्नतिके कार्य क्षेत्रका बोध किया है। दूसरे यज्ञवाचक " वेन " शब्दने वैयक्तिक तथा सार्वजनिक ज्ञान और मेधा शक्तिकी उन्नति की सूचना दी है और यज्ञवाचक इस तीसरे " अध्वर " शब्दने अहिंसामय सब कर्म करनेका उपदेश दिया है। पाठक इन बोधों का विचार करें और यज्ञवाचक शब्दसे जो कार्यक्षेत्र सन्मुख आता है उसको विचार की आंखसे देखें।

(४) मेध।

यह मेध शब्द भी यज्ञवाचक है। इसके मुख्य तीन अर्थ हैं, मेधाबुद्धिका संवर्धन, संगतिकरण अथवा संगठन और हिंसा। " मेधृ हिंसनयोः संगमे च " ये इसके धात्वर्थ हैं। मेधाबुद्धिका संवर्धन और संगम, मिलाप अथवा संगठन ये अर्थ ऐसे

हैं, कि जिनके विषयमें किसीकोभी कोई संदेह नहीं हो सकता। क्यों कि ये दोनों भाव यज्ञवाचक पूर्व शब्दोंमें आये ही हैं। "वेन" शब्द के अर्थमें जो ज्ञान वर्धन का भाव है, वही इसमें किंचित् रूपान्तरसे विद्यमान है। संगठनका भाव भी यज्ञ शब्दके समान ही इसमें है।

ये दोनों भावोंकी इसमें विद्यमानता है, इसीलिये हम कह सकते है, कि मेधमें "यज्ञ और वेन" इन दोनों यज्ञवाचक शब्दोंका भाव इकट्ठा हुआ है। यज्ञका संगतिकरण किंवा संगठन तथा वेन का ज्ञान संवर्धन ये दोनों भाव मेध में इकठे हुए हैं।

पहिले बतायाही है, कि "यज्ञ" शब्दसे उस कर्मका बोध होता है कि जो सार्व राष्ट्रीय है और "वेन" शब्दसे उस कर्मका विशेषकर बोध होता है कि जो वैयक्तिक होता है। ये दोनों प्रकार के कर्म "मेध" शब्दसे बोधित होते है, इसलिये हम कह सकते हैं कि मेध शब्दसे जिस यज्ञकर्म का बोध होता है वह यज्ञकर्म वैयक्तिक और सार्वजनिक दोनों भावोंसे युक्त है। अर्थात् मेधसे जैसा सार्वजनिक राष्ट्रीय हित सिद्ध होगा वैसा ही वैयक्तिक शक्तिसंवर्धन भी होगा।

नरमेध, अश्वमेध, गोमेध, अजमेध ये यज्ञ इस मेध के अंतर्गत है। उक्त शब्दार्थ लेनेसे इन यज्ञोंका भाव समझमें आसकता है। नरमेध वह कर्म है कि जिससे मनुष्य की वैयक्तिक और सार्वजनिक सभी उन्नति हो सकती है। ("नरमेध" का वर्णन करनेवाला स्वतंत्र पुस्तक यजुर्वेद स्वाध्याय में स्वा० मंडल द्वारा प्रसिद्ध हुआ है। पाठक इसका वर्णन वहीं देखें। इस पुस्तकमें यजु. अ. ३० कि व्याख्या ही है।)

"अश्वमेध" को "राष्ट्रं वा अश्वमेध." ऐसे वचन कह कर स्वयं शतपथ ब्राह्मणकारने ही यह यज्ञकर्म राष्ट्रसंवर्धन कारक है ऐसा कहा है। सम्राट् बननेवाला राजा एक अश्व छोडता है और संपूर्ण राजा महाराजाओंको युद्धका आह्वान करता है। युद्ध के लिये जो आते हैं उनके साथ युद्ध करके उनका पराभव करता है, इस प्रकार जो सम्राट् सर्वोपरि शक्तिमान होता है वह भूमंडलका शासक होता है। अश्वमेध की यह पद्धति ही इसकी राष्ट्रीयता सिध्द करती है।

गोमेध की पद्धति प्रायः लुप्त होगई है इसलिये उसका निरीक्षण करके यहां कुच्छ बताना इस समय असंभव है। तथापि नरमेध और अश्वमेध ये दो यज्ञ जैसे राष्ट्रीय स्वरूपके दिखाई देते है उसी प्रकार यह भी राष्ट्रीय स्वरूपका ही होना संभव है। गोरक्षा, गोसंवर्धन, भूमि तथा कृषिसंवर्धन आदि भाव भी इसमें होने की संभावना बहुत है।

शेष रहा जो अजमेध वह धान्य हवन का महायज्ञ है, इस विषयके प्रमाण इसी मासिकके गत अंकमें दिये ही हैं। अज शब्दका अर्थ धान्य है, चावल और जौं है। इनके पुरोडाशका तथा घृतादिका हवन करके

यह यज्ञ करनेका विधान इस समय भी वैष्णव संप्रदायमें प्रचलित है। इसलिये इस विषयमें अधिक लिखनेकी आवश्यकता नहीं है।

पितृमेध, गृहमेध आदि अनेक प्रकारके मेध हैं और इन सबमें मेधावृद्धि, संगठन आदिभाव है। इसमें जो " हिंसा " का अर्थ है, वह यज्ञमें पशुहिंसाका भाव नहीं बताता है, प्रत्युत उक्त कार्योंके विरोधकों की हिंसा करनी चाहिये, इतनाही बता रहा है।

मेध शब्दसे जो पुरुषार्थ के महत्कर्म पूर्व स्थलमें बताये हैं, उनमें राष्ट्रीय तथा सार्वजनिक अभ्युदयका भाव स्पष्ट है। इसलिये आवश्यकता पडने पर इन कार्योंके शत्रुओंकी हिंसा करनेकी सूचना यह शब्द दे रहा है। जिस समय यज्ञसंस्था जीवित और जाग्रत थी उससमय का भाव यह शब्द बता रहा है। परंतु यज्ञसंस्थाका नाश होने के पश्चात् हरएक धर्मकृत्यमें जिस प्रकार भ्रंश हुआ है, उसी प्रकार यज्ञ संस्थामें भी दिखाई दिया तो कोई आश्चर्य नहीं है।

तात्पर्य आजकल अश्वमेधादिमें अश्वमांसकी आहुति देनेकी कल्पना सन्मुख आती है, परंतु प्रारंभ में अश्वमेधमें जो हिंसा होती थी वह साम्राज्यके शत्रुओंकी ही होती थी। इतना भेद ध्यानमें धरना चाहिये। राष्ट्र रक्षकोंका रक्षण और राष्ट्र विध्वंसकोंकी हिंसा यह भाव मेधमें स्पष्ट है। इसी प्रकार अन्यान्य मेधोंके विषयमें जानना चाहिये।

यहां इस बातका ख्याल अवश्य मनमें रखना चाहिये, वह ख्याल यह है कि, यज्ञमें चतुर्विध हवन सामग्री, घृत, समिधा आदिकोंका हवन अभीष्ट ही था। परंतु जैसा अश्वमेधमें साम्राज्य स्थापना मुख्य है उसी प्रकार पितृमेधमें पितृसत्कार प्रमुखस्थान रखता है। तात्पर्य सब मेधों और यज्ञों में हवन करना एक कार्य अवश्य था ही, परंतु उस उस यज्ञका विशेष अन्य कर्म से ही जाना जाता था।

इस प्रकार मेध नामक यज्ञोंमें राष्ट्रसंवर्धनादि भावों के संबंधमें हिंसा कैसी संमिलित हुई यह बात देखने योग्य है। और यह हिंसा युद्धादि प्रसंगों के कारण आवश्यक ही थी। इतनाही नहीं प्रत्युत अपरिहार्य सी थी।

पहिले " यज्ञ " शब्द में राष्ट्रोन्नतिका भाव है द्वितीय " वेन" शब्दमें वैयक्तिक उन्नतिकी सूचना है, तृतीय " अध्वर " शब्दमें अहिंसामार्ग बताया है। अर्थात् अहिंसाके मार्गसे ही वैयक्तिक आत्मोन्नति और सामुदायिक राष्ट्रोन्नतिका साधन करना चाहिये। परंतु यहां प्रश्न होता है कि अहिंसा पूर्ण प्रेममय मार्गसे जिनका वशीकरण न हो जाय, और वे यदि प्रबल शत्रुता ही करने लगें तो क्या किया जाय? ऐसी अवस्थामें " मेध " शब्द आकर बता रहा है कि ऐसी अवस्थामें युध्दादि अपरिहार्यही है इसलिये वह करना चाहिये और आवश्यक हिंसा करनी चाहिये।

(५) विदथ ।

इस प्रकार शत्रुओंको दूर करनेके मेध आदि यज्ञकर्म करनेके पश्चात् हमारे सन्मुख यज्ञवाचक " विदथ " शब्द आता है, इसका मूल धात्वर्थ "ज्ञान, सत्ता (अस्तित्व) लाभ , विचार , चेतना " आदि है । " विदथ " शब्दके कोशोंमें अर्थ " ज्ञानी, साधु, त्यागी किंवा संन्यासी, ज्ञान और युद्ध " इतने हैं । मूल धात्वर्थ और ये प्रसिद्ध अर्थ इनका कोई विरोध नहीं है ।

जो युद्ध का भाव हमने मेध शब्दमें पूर्वस्थल में बताया है, वही इस शब्दके अर्थ में भी है । इसके अतिरिक्त मेध के द्वारा राष्ट्रकी सुस्थिति होते ही और शत्रु दूर होते ही, अपने राष्ट्रका ज्ञान बढाना, अपना राष्ट्रीय अस्तित्व स्थिर रखनेके लिये प्रयत्न करना अपने राष्ट्रका लाभ करनेका उपाय सोचना और इस प्रयत्न के लिये संपूर्ण राष्ट्रमें चेतनता उत्पन्न करना आदि कार्य इस "विदथ " शब्द द्वारा सूचित होते है । ये सब कार्य अंदरूनी सुधार के हैं । राष्ट्रकी आंतरिक सुधारणा करनेसे ही वह राष्ट्र सदाके लिये सुखी उन्नत तथा उच्च रह सकता है । इस लिये बाह्य शत्रु दूर करने के साथ ही आंतरिक सुधार के लिये प्रयत्न करने का विचार जो इस शब्द द्वारा वेदने बताया है, वह हरएक मनुष्य को विचार करके देखना आवश्यक है ।

(६) नार्यः ।

इसके पश्चात् " नार्यः " शब्द यज्ञवाचक नामों में निघण्टुमे लिखा है । " नृ-नये " इससे यह शब्द बनता है । नीति, राजनीति, ये इसके धात्वर्थ है । वैयक्तिक नीति साधारणतया नीति शब्दसे जानी जाती है जिसमें विधिनिषेध, अहिंसवर्धन तथा धर्माचार का संबंध है । दूसरी सामुदायिक नीति जिसका एक अंग राजनीति है । जो समाज अथवा राष्ट्र इन दोनों नीतियोंमें प्रवीण अथवा पूर्ण होता है वही परमं उच्चताके शिखरपर पहुंचता है ।

इस प्रकार ये यज्ञवाचक छह शब्द मनुष्यों के लिये वैयक्तिक उन्नति तथा राष्ट्रीय उन्नति का संपूर्ण ज्ञान और विज्ञान सूचीत कर रहे हैं । जो पाठक इन शब्दोंका विशेष विचार करेंगे उनको इन शब्दोंके अंतर्गत ज्ञानका पता स्वयं लगेगा और यज्ञके सार्वराष्ट्रीय महत्त्वका भी पता लग जायगा ।

इन शब्दोंके विचार से ही आर्यों की वैदिक यज्ञ संस्था की राष्ट्रीयता स्वयं प्रकाशित हो सकती है ।

(७) सवनम् ।

" षु- प्रसवैश्वर्ययोः " इस धातुसे यह " सवन " शब्द बनता है । प्रसव, उत्पत्ति, प्रेरणा, ऐश्वर्य, प्रभुत्व ये इसके धात्वर्थ है । ये धात्वर्थ यद्यपि सामान्य भाव बता रहे हैं, तथापि इसका विशेष भाव जो यज्ञमें प्रचलित है, वह " पेय रस " वाचक ही है ।

यज्ञमें तीन सवन होते हैं, प्रातः, मध्यंदिन और सायं ये तीन नाम इन तीन सवनों के हैं । सोम औषधिका रस निकालना

और उसका पेय बनाना यही इनमें मुख्य भाग है।

इन यज्ञोंमें " वाज पेय " एक यज्ञ है जिनके करनेसे यजमान को " वाजपेयी " कहते है। आज कल नामके वाजेपयी किंवा वाजपेयी पंडित बहुत है, परंतु किन कारणोंसे उनका वह नाम बना यह भी उनमेंसे बहुतों को पता नहीं होगा। यह अवस्था इस समय की है क्यों कि यज्ञ संस्थाका इतना लोप हो चुका है।

" वाज-पेय " शब्दका अर्थ (वाज) अन्न और (पेयं) पेय, खानपान है। "अन्न-पान" यही इसका अर्थ है। पाठक यहां देखें कि आर्यों की वैदिक यज्ञ संस्थामें "खान - पान " नामक भी एक यज्ञ है !! असलमें देखा जाय, तो हरएक यज्ञ में खान पान होता ही है, फिर इसी यज्ञका नाम (वाज — पेय) " खान पान "क्यों रखा गया ? यह प्रश्न विचारणीय ही है।

खान पान के संबंध का विचार इसमे विशेष होनेके कारण इस यज्ञका यह नाम रखा गया है। " वाज " शब्दका अर्थ शारीरिक बल और मानसिक शक्ति " भी है। अतः वाजपेयमें ऐसे अन्न और पेय का विचार होना स्वाभाविक है, कि जिसका शारीरिक और मानसिक शक्तिविकास के साथ घनिष्ट संबंध हो।

यह जैसा " वाज पेय " यज्ञमें हैं वैसा ही इस " सवन " में भी है। सवन में सोमरस का संबंध है और सोमरस ऐसी चीज है जो जीवनदात्री वैद्यशास्त्रमें सुप्रसिद्ध है।

पाठक यहां देखें कि आर्योंकी यज्ञसंस्था में खान पान का विचार भी कितना महत्व रखता है। राष्ट्रका और संघका हित उसी समय हो सकता है कि जिस समय राष्ट्र में खानपान का ठीक प्रबंध हो और ज्ञान संवर्धनकाभी प्रबंध उत्तम हो।

पिछले शब्दों द्वारा वार्णित अवस्था सिद्ध होते ही खानपान के प्रबंधकी सूचना यह शब्द यहां देरहा है। कितनी दृष्टिसे यज्ञका विषय विचार करना चाहिए और कितने महत्वपूर्ण विषय उसके अंदर हैं, इसकी कल्पना पाठकों को यहां हो सकती है।

(८) होत्रा।

(९) इष्टि।

ये यज्ञवाचक दो शब्द हैं, ये शब्द हवन के वाचक प्रसिद्ध हैं। यज्ञका एक प्रधान अंग हवन है हि।

निघटु १। ११ में " होत्रा " शब्द का अर्थ " वाणी " दिया है, इससे वक्तृ शक्ति के विकास का भी इसमे संबंध आशय आता है। इसी कारण ऐतरेय ब्राह्मण ५। ४ में " वाग्वै यज्ञः " कहा है।

(१०) देवताता।

यह शब्द यज्ञवाचक है, देवत्वका (तता) फैलाव करनेका भाव इसमे है।

पूर्व ९ शब्दों द्वारा यज्ञ कर्म करनेसे जो देवत्व प्राप्त होता है, उसका संपूर्ण जगत में फैलाव करना हरएक आर्यका धर्म ही है।

वह देवत्व प्रचारका सूचक कर्म इस शब्द द्वारा बताया है। स्वयं देव बनना और जगत् में देवत्वका प्रचार करना, स्वयं उच्च बनना और दूसरोंको उच्च बनानेका यत्न करना, स्वयं धार्मिक बनकर दूसरोंको धार्मिक बनानेके लिये धर्म प्रचारक बनना, इत्यादि सब भाव इस शब्द द्वारा सूचित हो रहे हैं पाठक इस लिये इस शब्दका विचार अवश्य करें।

(११) मख।

" मह" धातुका अर्थ " पूजा और वृद्धि" है और यही धात्वर्थ मख शब्दका है, इस कारण " पूजा और वृद्धि " का वाचक मख शब्द माना जाता है।

जो राष्ट्र पूर्व दस शब्दों द्वारा वर्णित कर्तव्य करेगा, उसकी संपूर्ण जगत में पूजा होगी और उसकी वृद्धि होगी, इसमें संदेहही नहीं। तथापि यह शब्द दूसरोंसे पूजा स्वीकार करनेका भाव नहीं बताता है, परंतु स्वयं इतनी अवस्था प्राप्त होनेपर भी सत्कार के लिये जो योग्य होंगे, उनका सत्कार करना और अपनी सब प्रकार से वृद्धि करनेका परम पुरुषार्थ करना, येही कर्तव्य सूचित करता है। अन्यथा उच्च शिखर पर पहुंचे हुए मनुष्यका भी पतन होना संभव है । अथवा उच्च शिखर पर पहुंचे मनुष्य का ही पतन अधिक जोर से होता है। और इसीलिये उच्च अवस्था प्राप्त होनेपर अधिक नम्रता और अधिक पुरुषार्थ का अवलंबन होनेकी अत्यंत आवश्यकता है।

(१२) विष्णु।

यह यज्ञवाचक शब्द है। इसका अर्थ व्यापक भाव बताता है। संकुचित भावका अभाव इस में है। यज्ञ वाचक " विष्णु " शब्द कर्मवाचकही है इसलिये " व्यापक कर्म " ऐसा इसका अर्थ है। व्यापक कर्मका तात्पर्य " वह कर्म कि जिस कर्म का परिणाम संपूर्ण जनतापर होता है," इसके विरुद्ध संकुचित कर्म है, इसका परिणाम व्यक्ति तकही रहता है।

यह यज्ञवाचक शब्द बता रहा है कि, यज्ञमें सार्वजनिक व्यापक दृष्टि अवश्य धारण करनी चाहिये। संकुचित दृष्टिका त्याग और व्यापक दृष्टिका उदय इसप्रकार यज्ञ कररहा है।

इस प्रसंगमें संकुचित परिणाम वाले कर्म और व्यापक परिणाम वाले कर्मोंका विचार पाठक करें और व्यापक कर्मोंसे राष्ट्रहित कैसा होता है और संकुचित कर्मोंसे कैसा उसका बिगाड होता है, यह अवश्य देखें। यह देखनेसे ही पाठकोंको विष्णु शब्दसे बतानेवाले यज्ञ के भावका स्पष्ट ज्ञान होगा और यज्ञकी सार्वजनिकता भी ठीक प्रकार ध्यानमें आजायगी।

(१३) इंदु।

अब यज्ञवाचक "इंदु शब्द" देखना है। इंदु सोम अथवा चंद्र यह शांतिका सूचक सब जानते ही हैं। "उंदी-क्लेदने" धातुसे इंदु शब्द बनता है। इसलिये इसका मूल अर्थ गीला करने वाला होता है। इसका भी तात्पर्य शांती करने वाला है।

इंदु चंद्रका नाम है और यही " कला निधि " भी है। कलाओंका निधि जो होता है, उसी को कला निधि कहते हैं। चौदह विद्याएं और चौसठ कलाएं होती हैं। चौसठ कला ओं अथवा हुनरों का जो अधिपति वही " कला-निधि, चंद, इंदु किंवा सोम " है।

पाठक पूछेंगे कि कलाओं का यज्ञके साथ क्या संबंध है? उत्तरमें निवेदन है कि यज्ञके साथ संपूर्ण कलाओं और हुनरों का संबंध है। शतपथ ब्राह्मणमें यज्ञ प्रकरणमें " शिल्प " का वर्णन इस स्थानपर देखने योग्य है। " शिल्प, आसुरी माया " आदि जो यज्ञमें प्रकरण हैं, उनको देखनेसे स्पष्ट पता लगता है कि यज्ञके कारण ही आर्यों में शिल्पोंका विकास हुआ था।

द्विजों की सब विद्याएं और सब कलाएं यज्ञ में प्रयुक्त होती थीं। और यह कलाओं के साथ होने वाला यज्ञ सर्वत्र राष्ट्रमें सुख और शांति स्थापन करने वाला होता था। इस समयतक बताये संपूर्ण यज्ञवाचक शब्दों का परस्पर संबंध देखनेसे पाठकों को स्वयं पता लग सकता है कि इस यज्ञसंस्था के कारण ही आर्योंके राज्यमें सुख और शांति रहती थी और उसका विशेष कारण कलाओंकी उन्नति ही है। जिस प्रकार संपूर्ण कलाओंसे युक्त चंद्रमा शांति देनेवाला होता है, उसी प्रकार संपूर्ण कला ओं से युक्त राष्ट्र भी शांतिमय और सुख समृद्धिसे परिपूर्ण हो सकता है। कलाओंका संबंध इस प्रकार सुखमय शांतिके साथ है।

इस शब्द द्वारा सूचित होता है, कि राष्ट्रमें कलाओंकी उन्नति करना भी यज्ञके साथ अत्यंत घनिष्ठ संबन्ध रखता है। देखिये यज्ञकी व्याप्ति कैसी है और उसका राष्ट्रहित के साथ कैसा दृढ संबंध है।

(१४) प्रजापति।

इसके पश्चात् यज्ञका नाम " प्रजा-पति" है। इसका दूसरा और कोई अर्थ ही नहीं है, प्रजाका पालन करनेका पूर्ण भाव इसमें है। जो भाव इस समय तकके शब्दोंमें हमने सूक्ष्मरूपसे देखा वही भाव इस शब्दमें स्पष्ट और व्यक्त रूपसे है।

राष्ट्रका पालन, जनताकी रक्षा, राज्यकी पालना यही यज्ञके उद्देश्य हैं, इस विषयमें पूर्व शब्दोंके अर्थ बतानेके प्रसंगमें जो हमने कहा है वही भाव इस शब्दसे पाठकों के मनमें दृढ होगया होगा।

यज्ञवाचक शब्दोंके भाव मनमें लेकर उनसे राष्ट्रकी पालना किस प्रकार हो सकती है यह पाठक अवश्य देखें और सोचें। ऐसा करनेसे पाठकोंके मनमें यज्ञ-संस्थासे जनताका हित कैसा होता है यह बात आ जायगी और यज्ञकी सर्वोपयोगिता उनके मनमें स्थिर हो जायगी।

(१५) घर्मः।

यह यज्ञवाचक अंतिम शब्द है। "गर्मी" उष्णता ये इसके अर्थ हैं।

दिलकी जो गर्मी होती है, हृदयकी जो

उष्णता होती है, वह जबतक रहती है, तब तक ही मनुष्य जीवित रहता है। जिस समय हृदय की गर्मी हट जाती है उस समय इसको मुर्दा कहते हैं। यही अवस्था राष्ट्रकी है। राष्ट्रके अंदर जिस समयतक उच्च विचारोंकी गर्मी होती है उस समय तक ही राष्ट्र जीवित और जाग्रत रहता है। एकबार यह उच्च विचारों की गर्मी राष्ट्रसे हटगयी तो उसका जीवन रहना ही मुश्कील है। इस कारण राष्ट्र उन्नतिके लिये इस प्रकार की "गर्मी" किंवा "घर्म" अर्थात् उष्णता अवश्य चाहिये।

यह गुण अंतमें इसलिये रखा है कि यह सर्वोपरि है। कोई इसे न भूले इसलिये इस को अंतमें कहा है। सब अन्यगुणोंके साथ इसका साहचर्य है इसलिये भी इसको सबके अंतमें कहा है। तात्पर्य यह है कि इस गुण की सार्वत्रिक आवश्यकता है। इस कारण इसका विशेष महत्व है।

यहांतक यज्ञवाचक नामों के तात्पर्य का विचार हमने इस लेखमें किया है। इस विचार से पाठकों के मनमें यह बात अच्छी प्रकार आ जायगी कि यह वैदिक यज्ञसंस्था, जो कि आर्यों में चिरकालसे विद्यमान थी, वह राष्ट्रीय शक्तिका विकास करनेवाली थी, इस यज्ञसंस्थाके कारण आर्योंमें वैयक्तिक तथा सामुदायिक सद्गुणोंका परिपोष होता था।

यदि यह बात सत्य है तो यज्ञ किस रीतिसे करने चाहियें और किस रीतिसे नहीं, इसका विचार करना यजमानको अत्यंत आवश्यक है। विशेषतः इस समय कि जिस समय संपूर्ण यज्ञसंस्थाका लोप हो चुका है, उस समय यज्ञ करना हो, तो विशेष ही सावधानी के साथ करना चाहिये अन्यथा लाभ की अपेक्षा हानिकी ही संभावना विशेष होगी।

इस समय जो लोग समझते हैं कि यज्ञ हमारा निजू और खानगी कार्य है, वे यदि केवल इन नामोंकाही विचार करेंगे, तो उनको यह यज्ञसंस्था निजू किंवा खानगी नहीं हो सकती, यह हमेशा ही सार्वजनिक है, यह ज्ञात होगा।

यज्ञकर्ताको इस बातका ज्ञान आवश्यक ही है। इस बातके ज्ञानके विनाही जो यज्ञ करनेके लिये प्रवृत्त होगा, उसका कर्म निष्फल होनेमें शंकाही क्या हो सकती है!

वैदिक कर्मकांड के लुप्त होनेकी कोई सीमा ही नहीं रही है। जो यज्ञसंस्था शुद्ध राष्ट्रीय रक्षणकी संस्था थी, वही आज एक वैयक्तिक कर्मसंस्था बन गई है, इससे अधिक विधाका लोप तो क्या हो सकता है?

इसलिये जो यज्ञके कर्म कर्ता हैं, वे सबसे पहिले यज्ञसंस्थाके तत्त्वके साथ परिचित हों और पश्चात् यज्ञ में करने के लिये प्रवृत्त हों। तब उनको सत्य वैदिक कर्म सत्य वैदिक मार्ग से करनेका ज्ञान होगा, और उसके करनेसे जैसा एक व्यक्तिका तथा सर्व जनताका भी भला होगा।

ग्रंथ माला।

१ हिंदी स्वराज्य— (लेखक-श्री कृष्णाजी विनायक वझे, इंजीनियर नासिक, मू. १॥ अपने देशकी सब प्रकारसे धर्मानुकूल उन्नति किस रीतिसे हो सकती है, इस विषयका निदर्शन और विचार इस पुस्तक में किया है। प्राचीन हिंदी राजकीय संस्था, ग्रामसभा, आदि सबका यथायोग्य विचार इस पुस्तक में है। पुस्तक मराठी भाषामें है।

२ प्रथ प्रदीप -(अनुवादक-श्री. पं. धर्मेन्द्रशास्त्रीजी, प्रोफैसर मेरठ कालेज। लेखक श्री. टी. एल. वास्वानी मू. १)

"ऋषिदयानंद और आर्य आदर्श" के विषयमें कतिपय विचार जो टी. एल. वास्वानी जीने अंग्रेजीमें प्रकाशित किये थे उनका भाषानुवाद यह है, मूल लेखक जैसे अंग्रेजीके प्रसिद्ध ओजस्वी लेखक है उसीप्रकार अनुवादक भी भाषाके प्रभावी लेखक हैं, इस लिये यह पुस्तक धर्मपथपर चलनेवालों के लिये निःसंदेह प्रदीपवत् होगई है। पुस्तक सर्वदृष्टी से पढने योग्य है।

३ शिवबोध—(ले.-श्री. हरिशरण श्रीवास्तव मराल,वकील, मेरठ मू. ≈)

बोध रात्रीके विषयमें काव्यमय रसपूर्ण वर्णन इस पुस्तक में पाठक देखकर आनंद प्राप्त कर सकते हैं।

४ मनुष्य सुधार।

५ षोडश संस्कार विधि। मू. ॥

६ सत्यासत्य निर्णय। ॥)

७ जातीय आन्दोलन।

८ आर्य समाजमें बाधाएं। ॥)

(ले०— श्री० पं. चंद्रिका प्रसाद आत्रेय, सर्वोपकारी पुस्तकालय. कानपूर).

प्रथम पुस्तक में मनुष्य सुधार के लिये आवश्यक बातोंका उत्तम विचार है। तथा दूसरे पुस्तकमें सोलह संस्कारोंके पूर्ण प्रयोग लिखे हैं। अन्य पुस्तकेंभी उद्देश्यकी पूर्ति करनेवाली है।

९ ऋषिदयानंदकी जीवन कथा।

(ले०— श्री. घासीराम जी। प्रकाशक— बा. शिवकुपाल, विद्याप्रिंटिंग प्रेस, मेरठ। मू.–)

यह पुस्तक बालकोंके हितार्थ लिखी है और वह उस कार्यके लिये अत्यंत उत्तम पुस्तक है।

१० हिंदू सर्वस्व। (संपादक— श्री. रघुनंदन झा। प्रकाशक— पं. दुर्गाचंद्र जोशी वैद्य। कनखल। हरिद्वार। वार्षिक मूल्य ४)

हिंदू, हिंदी तथा हिंद के हित का विचार करनेके लिये यह पत्र प्रकाशित हो रहा है।